वर्ष ७, अंक २

श्रीकृष्णाय नमः

कार्तिक पूर्णिमा १९८९

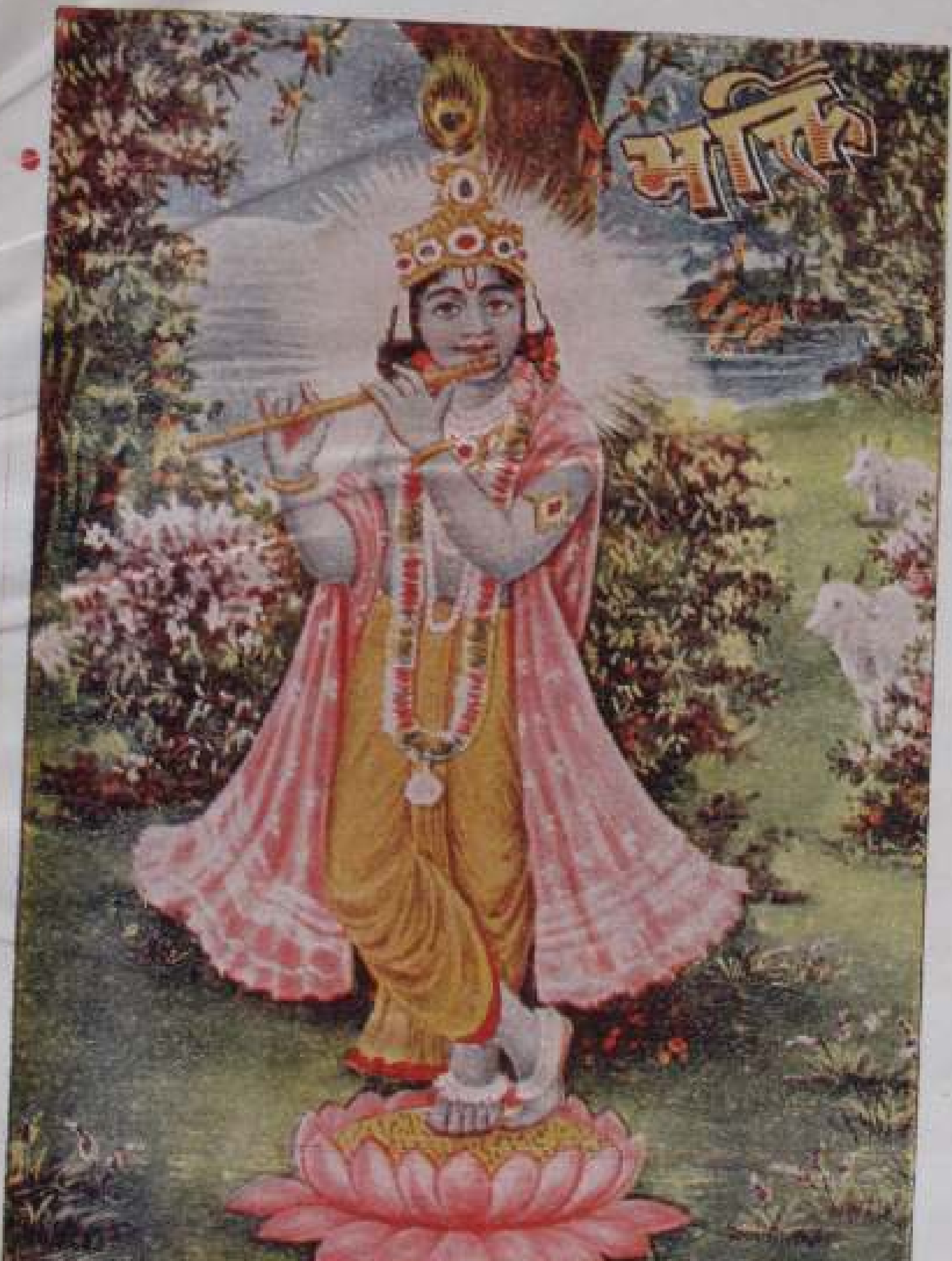

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक--
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख / लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	३३
२.	भगवद्भक्ति (ले० पूज्य श्री भोले बाबा	३४
३.	आदर्श मित्र (ले० श्रीगंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण	४०
४.	श्री रूपरसलास्त (कविता) (रचयिता श्रीदामोदर सहाय एल० टी० कविकिंकर	४५
५.	भक्त संग का प्रभाव (ले० आचार्य मदन मोहन गोस्वामी	४५
६.	ईश्वर और अन्य देवता (ले० ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी	४७
७.	ईश्वर प्राप्ति के उपाय (ले० श्री गौरीशंकर जी गुप्त	५०
८.	तेरी छवि (कविता) (रचयिता मदनगोपाल सिंहल	५२
९.	ममता और समता (ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी	५२
१०.	कलि काल के वाचक ज्ञानी (ले० भक्तरत्न मथुराप्रसाद जी रिटायर जज	५३
११.	श्रुतिसार	६०
१२.	अवधूतोपाख्यान (ले० प्रभुदेव ब्रह्मचारी आश्रम	६१
१३.	भजन	६३

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।-)
३. वेदोपनिषद्		-)
४. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	-)।
५. ज्ञानधर्मोपदेश	"	-)॥।
६ भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
७. सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	।)
८. सत्य शब्द संग्रह	"	।≡)
९. शब्दसंग्रह	"	-)।
१०. सारसंग्रह	"	।)
११. भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१२. मनुस्मृति सार	"	≡)।
१३. भक्ति चिन्तामणि	"	।≡)
१४. भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१५. भगवदंक	"	॥।)
१६. गवांक	"	१)
१७. महात्मांक	"	१)

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक प्रेमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

परशुराम-राम

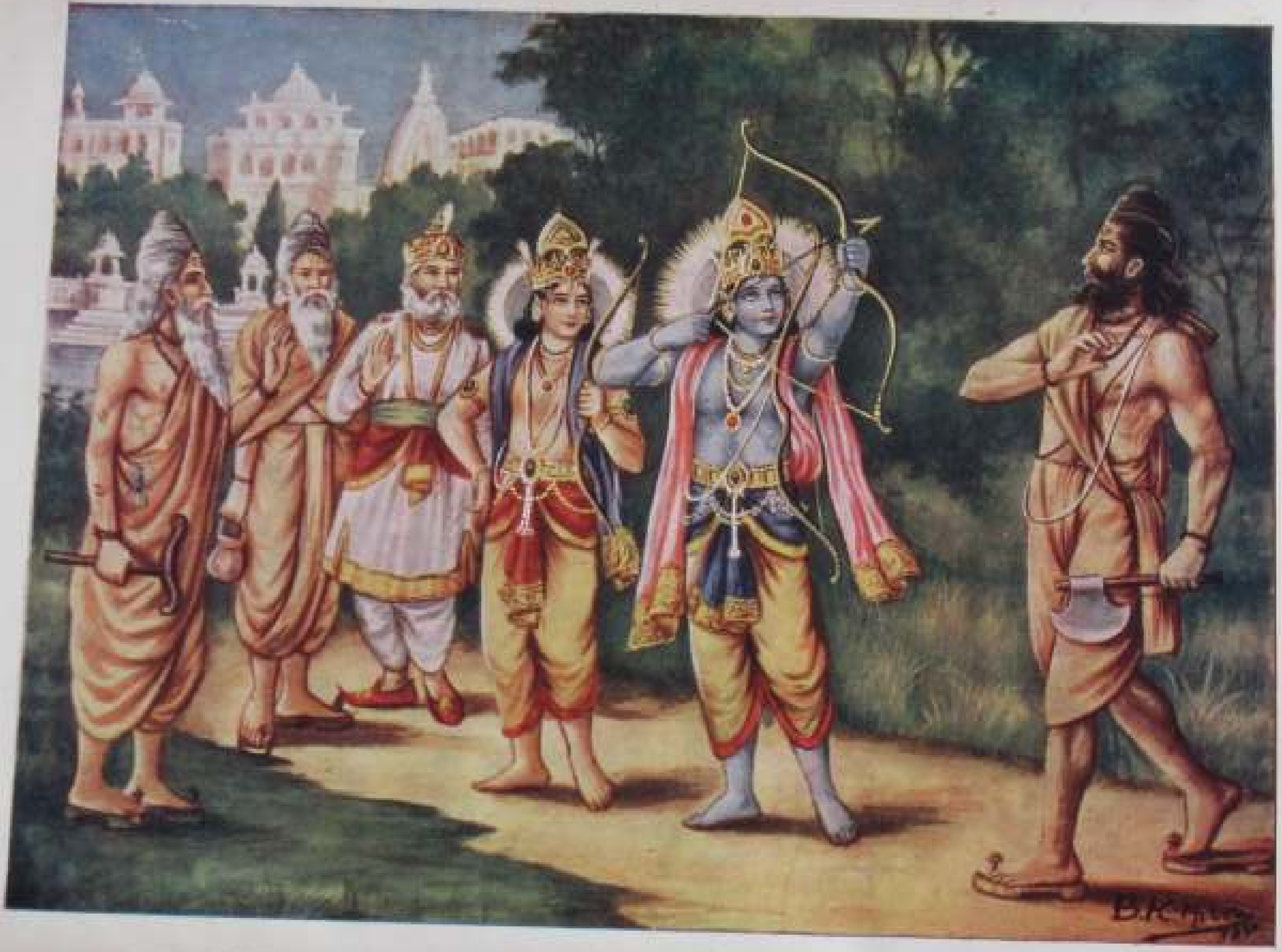

जडीकृते तदा लोके रामे वरधनुर्धरे । निर्वीर्यो जामदग्न्योऽसौ रामो राममुदैक्षत ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम
भक्त

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ७ } श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, कार्तिक पूर्णिमा सं० १९८९ { अंक २
पूर्ण संख्या ७४

वेदोपदेश

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि ।
प्रशस्तिकृद्ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १ ॥

अय सम्पूर्ण विश्व को वरण स्वीकार करने वाली तू सारे जीवन जगत् की मानो जननी है प्रकृति माता की मानो सैनिक शक्ति है और जीवन यज्ञकी मानो ध्वजा है सुख सौंदर्य को उन्नत करती हुई एवं सत्कर्मों का विस्तार करती हुई महान ज्ञान प्रकाश के लिये उज्ज्वल व्यापक और प्राणी मात्रको तेजस्वी बनादे ॥ १ ॥

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
स नो मन्द्रेष-मूर्जं दुहाना धेनु-र्वागस्मा-नुप सुष्टुतैतु ॥ २ ॥

इस वाणी देवीको इन्द्रिय देवों को दिव्य शक्तियें विकसित करती हैं फिर इस विकसित वाणीको सभी प्राणी अपने अपने अनुकूल बोलते हैं। हे सर्वेश स्वामिन् यही आनन्द मयी एवं प्रशंसनीय वाणी का कामधेनु बल तेज तथा अन्न का दोहन पूर पूर्ण करती हुई हमें प्राप्त हो ॥ २ ॥

तां पूषन् शिवतमा मेरयस्व यस्यां बीजंमनुष्याः वपंति।
या न उरू उशती विश्रायते यस्या मुशन्तः प्रहरामशेपम् ॥ ३ ॥

अये पालक शक्तियों के स्वामिन? मानव संसार में उस कल्याण मयी माता को प्रेरणा करो की जिस में मनुष्य को जीवन शक्तियों का उत्तम से उत्तम बीज डाला जाता है जो हमें पूर्ण कामना के साथ आश्रय दे सके और जिस में हम सम्पूर्ण जीवन का संचार पासकें ॥ ३ ॥

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमोयुवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान् यदिशक्नवाम मा ज्यायसः शंसमावृक्ष देवाः ॥ ४ ॥

बड़ों के लिये नमस्कार हो छोटों के लिये आदर हो युवकों के लिये मान हो और सब के लिये भला हो। यदि होसके तो सदा गुरु जनों की सेवा करें हे गुरुजनों आशीर्वाद दो की बड़ाई का नष्ट करने वाला कभी न बनूं ॥ ४ ॥

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभि द्रोहं चरामसि।
प्रचेता न अङ्गिरसो द्विषतां पात्वं हसः ॥ ५ ॥

हे इन्द्र अपनी अज्ञानता से हम जो भी द्वेष अथवा द्रोह का आचरण करते हैं उस द्वेष एवं द्रोह रूपी पाप से आप एक सच्चे तत्व ज्ञानी की भांति सुरक्षित करते हैं ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

कथा कर्मांबाई की।

कर्मांबाई वात्सल्य उपासक परम भक्त हुई हैं। नियम है कि छोटे बालक प्रभात ही उठते हैं और खिचड़ी या रोटी खाने को मांगा करते हैं और माता को लड़के के जागने से पहले चिन्ता होती है। इसी नियम से कर्मांबाई को उसी भांति से पहले भगवान् के लिये खिचड़ी तैयार करने की चिन्ता होती थी और बिना न्हाये और आह्निक किये बिना थोड़ी सी खिचड़ी छोटी सी कुल्हड़ी में अंगारों पर रख दिया करती थी और जब वह तैयार हो जाया करती थी अत्यन्त प्रेम से भगवान् को भोग लगाया करती थी और जगन्नाथ-राय स्वामी पुरुषोत्तमपुरी से आकर अति प्रसन्न

होकर भोजन किया करते थे। एक बार एक साधु आया और आचार पूर्वक भोग लगाने की शिक्षा दे गया। कर्मांबाई लाचार होकर आचार पूर्वक भोग लगाने लगी और भगवत् के भोजन में देरी होने लगी। एक दिन भगवत् कर्मांबाई की गोद में बैठे हुए खिचड़ी खा रहे थे, उधर पुरुषोत्तमपुरी में राजभोग की तैयारी हुई, तो भगवत् बिना हाथ मुंह धोये हुए ही वहां जा पहुंचे। पंडों ने भगवत् के हाथ और मुख में खिचड़ी लगी हुई देख कर चकित होकर विनय करके कारण पूछा, आज्ञा हुई कि कर्मांबाई प्रभात ही हमको खिचड़ी का भोग लगाया करती थी और हम उसकी प्रीति के वश होकर भोजन करने जाया करते थे, अब एक साधु ने उस बाई को आचार करने की शिक्षा कर दी है, इसलिये विलम्ब हो जाता है, उस साधु को आज्ञा देनी चाहिये कि कर्मांबाई को शिक्षा दे कि पहले जैसे किया करती थी, वैसे ही किया करे। पुजारियों ने उस साधु को ढूंढ कर कर्मांबाई के घर भेजा और वह भगवत् आज्ञा की शिक्षा दे आये, कर्मांबाई ने इस हेतु से कि मेरा लड़का सुकुमार और थोड़ा खाने वाला है, दो पहर तक उसे भूखा मरना पड़ता है, इस आचार क्रिया को भार समझ रक्खा था, जब पहली रीति की शिक्षा पाई, तो वह ऐसी प्रसन्न हुई कि अंग में फूली न समायी।

अब तक कर्मांबाई के नामसे सब भोगों से पहले जगन्नाथराय जी को खिचड़ी का भोग लगाया जाता है। इसके दो कारण समझे जाते हैं, एक यह कि गीता में भगवान् का वचन है कि जो कोई जिस भाव से भजता है, वह उसी भाव को प्राप्त होता है। इस वचन के प्रमाण से कर्मांबाई जी को यशोदा रानी की पदवी मिली है क्योंकि उनको मरने के समय अपने वात्सल्यभाव में दृढ़ निष्ठा थी और उसी के अनुसार कर्मांबाई जी अब तक भगवत् को खिचड़ी का भोग लगाती है। दूसरा हेतु यह है कि भगवत् अपने भक्तों को शिक्षा देते हैं कि मेरी प्रीति और वात्सल्यता की यह पदवी है कि कर्मांबाई जी की खिचड़ी का स्वाद अब तक मेरी जीभ में से नहीं गया। उपासक, प्रेमी और रसिक लोगों को विदित रहे कि इसमें सन्देह नहीं है कि कर्मांबाई आप आकर खिचड़ी का भोग लगाती हैं, क्योंकि हजारों प्रकार के भोजन भगवत् के लिये पुरुषोत्तमपुरी में तैयार होते हैं, उनमें कर्मांबाई की खिचड़ी का सा स्वाद नहीं है।

कुं:—खाना पीना कुछ नहीं, नहीं भूख ना प्यास।
खाता खिचड़ी आय के, भक्तों के जो पास॥
भक्तों के जो पास, आय के भोग लगाते।
हूं मैं भक्ताधीन, भाव भगवत् दिखलाते॥
भोला! भगवत्प्रेम, खेंच भगवत् को लाता।
निर्गुण भी वश प्रेम, सगुण बन बनकर है आता॥

कथा कृष्णदास की।

कृष्णदास जी वात्सल्य निष्ठा में ऐसे परम भक्त हुए कि श्रीगोवर्धनधारी ब्रजभूषण महाराज ने उन्हें अपने नित्य परम आनन्द में मिला लिया। यह श्रीवल्लभाचार्य गुरु के वचन पर ऐसे आरूढ़ हुए कि आप भजन और सेवा के स्वरूप हो गये। इनका काव्य ऐसा दूषण रहित है कि पण्डित और भक्त सब उसको धन्य समझ कर दण्डवत् करते हैं और अब तक विमुखों को राह बताने वाला है। यह ब्रज की रज को अपने इष्टदेव सदृश जानते थे। और सदा भगवद्भक्तों के सत्संग में रहते थे एक बार शृंगार की सामग्री खरीदने दिल्ली में आये [illegible] जलेबी देख कर इनके जी में आया कि यदि

नाथ जी के लिये ये जलेबियाँ भेजी जाँय, तो वे आँगन में खाते फिरते हुए और बन्दर और जानवरों को खिलाते हुए बहुत प्रसन्न होंगे और यह भी जानेंगे कि हमारे बाबा ने हमारे लिये दिल्ली की मिठाई भेजी है और अपने सखाओं को खिलावेंगे। बस उस ध्यान के स्वरूप के चिन्तन में मग्न होकर इन्होंने उन जलेबियों का श्रीनाथ जी को भोग लगाया और वह भोग ऐसा अंगीकार हुआ कि दुकान से जलेबियों का थाल उठा के श्रीनाथ जी के आगे आ गये और उसका प्रसाद अपने सेवकों को बटवाने लगे। किसी २ ने नहीं लिया और यह समझा कि पुजारी की बुद्धि में भेद आ गया है, न जाने ये जलेबियां किस आचार से बनी हैं और किसी २ ने महाप्रसाद जाना और कृपा और आचार के लिये यह समझा कि बड़ों के आचरण में दोष न निकालना चाहिये, उनकी आज्ञा शिर पर धारण करना उचित है।

वहां से आगे चले, एक वारमुखी को नाचते देख कर प्रेम में मग्न हो गये कि इस चन्द्रमुखी का नाच नाथ जी को दिखाना चाहिये। वारमुखी को अपने पास बुला कर कहने लगे कि हमारा लड़का नाच राग का बड़ा रसिया है, उसके सामने नाचने को चल उसने मंजूर कर लिया, उसको साथ लेकर चले। मार्ग में मानसी गंगा स्नान कराके श्रीनाथ जी को चमक दमक के गहने वस्त्र पहनाये और इतर पान सुरमा इत्यादि से संवार के मंदिर में ले गये। वह वेश्या श्रीनाथ जी का स्वरूप देख कर प्रेम के मद में मतवाली हो गयी और मन, कर्म और वचन से भगवत् की होकर देखने और दिखलाने के रस से बेसुधि बुध हो गयी। कृष्णदास जी ने पूछा कि हमारे साहिबजादे को देखा? वेश्या ने उत्तर दिया कि देखा और मेरे मन और नयनों में समा गया। फिर वेश्याने नाचना गाना आरंभ किया और ऐसे २ भावना अपने मुसकान, चितवन और बतलाने इत्यादि की बनाई और दिखलाई कि उस पर गिरधारी को उसने अपने रूप, नाच, राग और भाव के वश कर लिया, फिर वह तदाकार रूप होकर और तनको छोड़ कर नित्य विहार में जा मिली। भगवद्भक्तों को करोड़ों दण्डवत् हैं कि एक क्षण में जिसने कभी नाम तक मुख से उच्चारण नहीं किया, ऐसे परम पातकी और अधमों को उस पदवी पर पहुंचा देते हैं कि वह अनन्त ब्रह्मांडों का उत्पन्न करने वाला हो जाता है।

कृष्णदास जी ने प्रेमरसरास ग्रन्थ बनाया। उसको श्रीनाथ जी ने आप अङ्गीकार किया। सब भक्तों की उसमें प्रेम और प्रमाण रूप है। एक बार मिलने के समय सूरदास जी ने कृष्णदास जी से कहा कि अपना बनाया हुआ कोई पद पढ़ो, जिसमें मेरे बनाये हुए पदों का भाव न हो। कृष्णदास जी ने दश पाँच पद सुनाये परन्तु सूरदास जी ने सब में अपने बनाये हुए भाव बताये और पद पढ़ दिये। कृष्णदास जी महाराज कृपालु ने अपने भक्त की चिन्ता देख कर आप एक पद बना कर उनके तकिये के नीचे रख दिया। कृष्णदास जी ने प्रभात उठ कर उसे देखा तो भगवत् कृपा से आनन्दित होकर सूरदास जी को यह पद सुनाया। सूरदास जी परमभक्त थे ही जान गये और कहने लगे कि यह करतूत तुम्हारे कौतुकी की है कि अपने बाबा की हिमायत ली। यह कह कर दोनों भगवत् प्रेम में बेसुधि हो गये। पहला तुक भगवत् के बनाये हुए पद का यह है। आवत बने कान्हा गोप बालक संग बच्छ की खुर रेणु छुरित अलकावली। हे प्रेमसागर! कृष्णदास जी और सूरदास जी दोनों गुरु भाई

वल्लभाचार्य के चेले हैं।

कृष्णदास जी नित्य मथुरा जी से विश्रान्त घाट का जल भगवत् स्नानके निमित्त लाया करते थे। गोवर्धन से मथुरा नवकोस है। भगवत् ने मना किया कि इतने परिश्रम का कुछ प्रयोजन नहीं परन्तु जब कृष्णदास जी लाचार होकर कूपजल से स्नान कराने लगे तबएक दिन वे पांव के कांपने से कूप में गिर पड़े और भगवत् के नित्य लीलाविहार में जा मिले। रसिक लोगों को एक तो उनके वियोग का दुःख हुआ और दूसरे कूप में गिरकर मरने का हुआ। श्रीनाथ जी उस निन्दा को न सह सके और कृष्णदास की नित्य विहार में मिलने की सब को यह परीक्षा दी कि कृष्णदास जी एक ग्वाल को गोवर्धन के निकट मिले और कहने लगे कि गोसाईं विट्ठलनाथ जी से दण्डवत् करके विनय करना कि इस घड़ी वह कौतुकी और ढीठ गोवर्धन की ओर अकेला चला गया है, उसके ढूंढने को जाना है, इसलिये आ नहीं सकता और मेरे शयन स्थान में साठ हजार रुपया गड़ा है, तुम उसको निकलवा कर आधे का आभूषण और शृंगार श्रीनाथ जी का करना और आधा साधु सेवा में लगा देना। विट्ठलनाथ जी ने ढूंढा, तो उतना ही रुपया निकला सब को विश्वास हुआ।

कुं:-भक्तन हित लीला करें, अद्भुत यादवराय।
गोवर्धन से आयके, गये अकेली धाय॥
गये अकेली धाय, नाच देखा वेश्या का।
पद करके निर्माण, मान रक्खा बाबा का॥
भोला! भज श्रीनाथ, अगपति शक्ति अपरिमित।
सकल विपद भाजाय, पुत्र बनते भक्तनहित॥

कथा गोकुलनाथ की।

गोसाईं गोकुलनाथ के पुत्र वल्लभाचार्य के पौत्र परम भक्त, सब गुणों के समुद्र, बुद्धिमान, सुन्दर, धीर, सहिष्णु और मितभाषी श्रीगिरधर महाराज के भजन में दृढ़ हुए। भक्ति के प्रताप से इनके चरणों को सब राजा दण्डवत् करते थे। यह भीतर बाहर एक से थे और इनका मन सब संसारियों के लाभ के हेतु सावधान रहता था। एक बार एक बड़ा धनवान् सेवक होने के लिये इनकी सेवा में आया और लाखों रुपया भेंट करने को लाया। गोसाईं जी ने पूछा कि तुम्हारे हृदय की प्रीति किस वस्तु में है। उसने उत्तर दिया कि किसी वस्तु में नहीं है। गोसाईं जी ने कहा कि तुम किसी अन्य गुरु को ढूंढ लो, यदि तुमको किसी वस्तु में प्रीति होती, तो हो सकता था कि उस ओर से मनको हटा कर भगवत् की ओर लगा दिया जाता। जब स्नेह का बीज ही नहीं है, तो भक्ति का बीज कैसे उत्पन्न हो सकता है। कि जो मन स्नेह और चाह रहित है, वह तीक्ष्ण पत्थर के समान है।

कान्हा भंगी नाथ जी के मन्दिर में नित्य झाड़ू देने आया करता था और भगवत् के रूप अनूप का दर्शन करके उसके रस और प्रेम में मग्न रहता था। श्रीनाथ जी पर सब की नजर पड़ना अच्छा न समझ कर गोसाईं जी ने एक आवरण की दीवार खिंचवा दी, इससे कान्हा को भगवत् का दर्शन होना बन्द हो गया। भक्तवत्सल को यह बात पसन्द न आई, उन्होंने स्वप्न में कान्हा को आज्ञा दी कि गोसाईं गोकुलनाथ जी से विनय कर देना कि नई दीवार गिरवा दें, हमारे दूर तक अवलोकन में यह बाधा करती है। कान्हा ने मन में

विचार किया कि गोसांई जी तक पहुंचने की मेरी गति कहां है, यदि जाऊं तो द्वारपाल ढिठाई समझ कर पीटेंगे, लालजी महाराज वृथा ही मुझे प्रेरणा करते हैं। यह समझ कर कान्हा चुप हो रहा। श्रीनाथ जी महाराज ने तीन दिन यह ही आज्ञा की। भंगी लाचार होकर गया और ड्योढ़ी दारों से कहने लगा कि गोसांई जी को खबर करदें परन्तु किसी ने गोसांई जी तक खबर न पहुंचाई। किसी आदमी ने बागीचे में गोसांई जी को यह बात जनादी। उसी घड़ी उन्होंने उसे बुलवाया और उसके विनय के अनुसार एकान्त में पूछा। कान्हा ने भगवत् का संदेशा सुनाया और यह भी कहा कि तीन दिन से बराबर आग्रह कर रहे हैं। गोसांई जी ने पूछा कि क्या मेरा नाम लेकर नाथ जी ने आज्ञा की है। कान्हा ने कहा हां, आप का नाम लेकर ही कहा है कि दीवार गिरवा दें। गोसांई जी को भी इस बात का कुछ संकेत हुआ था, कान्हा की बात सुन कर वे बेसुध होगये और उन्होंने दौड़ कर कान्हा को छाती से लगा लिया और भगवत् की आज्ञा का पालन किया।

दो०—कान्हा भंगी भक्त पर, रीझे गिरिधरलाल।
दर्शन दीन्हें स्वप्न में तुड़वादी दीवाल॥
तुड़वादी दीवाल, भक्त कूं दर्शन दीन्हों।
भंगी गोकुलनाथ, लगा छाती से लीन्हों॥
भला वही पवित्र, कृष्ण जो अपना माना।
जो है गोकुलनाथ, वही है भंगी कान्हा॥

कथा गुञ्जामाली की।

गुञ्जामाली नाम विख्यात होने का कारण यह है कि गुञ्जा यानी घोंघचियों की माला बहुत पहिना करते थे क्योंकि व्रजभूषण महाराज को उनकी माला बहुत प्यारी है। गुञ्जामाली का अर्थ घोंघचियों का माला वाला है। यह लाहौर के रहने वाले थे, जब इनका बेटा मर गया, तो इन्होंने बहू से कहा कि धन, सम्पत्ति, घर बार सब तेरा है और गोपाल जी महाराज मालिक और स्वामी हैं, जो इच्छा हो, वह लेकर भगवद्भजन किया कर। बहू भगवद्भक्ता थी, कहने लगी कि मुझे कुछ चाहना नहीं है, गोपाल जी महाराज की मूर्ति सेवा के हेतु मुझे दे दीजिये। जब बहू ने इस प्रकार भगवत् सेवा के लिये बहुत विनय किया, तो गुञ्जामाली जी ने भगवत् सेवा तो बहू को सौंपी और माल, असबाब को दे कर आप श्रीवृन्दावन आये और व्रजचन्द्र महाराज के भजन कीर्तन में लगे। उधर वह बड़भागिनी बहू सेवा करने लगी और भगवत् सेवा में ऐसी लवलीन हुई कि कोई घड़ी भजन और सेवा बिना न जाय। जहां भगवत् मूर्ति विराजमान थी, वहां दूसरों के लड़के उस बहू की चाहना और भावना से खेला करते थे। एक दिन उन लड़कों ने भगवत् के ऊपर धूल डाल दी। बहू ने उन पर क्रोध किया और उनका आना बन्द कर दिया। जब बहू ने भोजन तैयार करके भोग धरा, तो भगवत् ने भोजन नहीं किया और अनमने होकर कहा कि तूने हमारे सखाओं का आना बन्द कर दिया है, हम तेरी रोटी नहीं खाते। बहू ने बहुत मनाया, फुसलाया, परन्तु भगवत्‌ने एक न सुनी, तब बहू कातर होकर कहने लगी कि मेरा क्या बिगड़ता है, तुम्हारी ही पोशाक बिगड़ती है, कल जितनी धूल डालेंगे, डलवा दूंगी, अब तो भोजन करलो। भगवत् अपने सखाओं के बिना राजी न हुए, लाचार बहू लड़कों को मिठाई देने को कह कर फुसला कर ले आयी। जब सखा आगये तब भगवत् ने भोजन किया। धन्य है, भगवत् की कृपालुता और दयालुता कि

अपने भक्तों की प्रीति का ऐसा निर्णय करते हैं।

कुं०—ब्रह्मादिक सनकादि भी, नत करते हैं शीश।
प्रसन्न होता धूल से, सो दयालु ब्रजेश॥
सो दयालु ब्रजेश, प्रेम से वश हो जाता।
लीला करे अपूर्व, खेलता तथा खिलाता॥
भोला! भज विश्वेश, जिसे भजते सनकादिक।
नारद शेष गणेश, सिद्ध, सुर, मुनि ब्रह्मादिक॥

कथा गिरधर की।

गिरधर जी महाराज विट्ठलनाथ जी के पुत्र और वल्लभाचार्य जी के पौत्र कल्पवृक्ष के सदृश वह उससे भी अधिक हुए क्योंकि कल्पवृक्ष तो केवल सांसारिक पदार्थ देता है और वे भी कामना करने से देता है और गिरिधर महाराज तो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष और भगवद्भक्ति चाहना बिना ही देने वाले हुए। सब शास्त्रों का सार और मूढ़ का मुख्य तात्पर्य जो भगवत् ज्ञान है, उसको इन्होंने सम्यक् प्रकार से समझा और ब्रजराज कुँवर महाराज की सेवा में वात्सल्यभाव से प्रेम लगाया। केवल इनके दर्शनों से ही लोग पवित्र होते थे और जिस सभा में यह बैठते थे, वहां भगवत् प्रेम का अमृत बरसता था। इनके गुण और भाव का कहां तक कोई वर्णन करे।

कुं०—ज्ञानी योगी है वही, वह ही सच्चा भक्त।
शिक्षा दे हरि भक्ति की, हरि में हो अनुरक्त॥
हरि में हो अनुरक्त, यथा गिरिधर गोस्वामी।
ज्ञान भक्ति भंडार, कामदा आप अकामी॥
भोला! नरहैं धन्य, मानप्रद आप अमानी।
मन वाणी अरु कर्म, कृष्ण सेवारत ज्ञानी॥

कथा त्रिपुरदास की।

त्रिपुरदास जी जाति के कायस्थ, शेरगढ़ के रहने वाले वात्सल्यभाव से प्रेम और भक्ति के स्वरूप ही थे। हर साल जाड़े के दिनों में इनका यह नियम था कि श्रीनाथ जी महाराज के लिये जरदोजी या अन्य किसी अति सुन्दर प्रकार की पोशाक तैयार करके भेजा करते थे। संयोग वश राजा ने इनका सब धन छीन लिया और इनके पास कुछ न रहा। सोचने लगे परन्तु कुछ उपाय न सूझा अधिक शोच तो यह हुआ कि उस सुकुमार को जाड़ा लगता होगा। यह शोचकर विकल होकर रोने लगे और घर में आकर ढूंढने लगे, तो एक दवात हाथ लगी। उसको बेच कर एक थान सुन्दर माल लेकर, कुसुंभी रंगवा कर एक रजाई सिलवाई और भेजने के उपाय में लगे परन्तु इस कपड़े को देख २ कर यह शोचा करते कि हाय, उस परम मन हर शोभायमान और अतिसुकुमार के लिये क्या ऐसा मोटा कपड़ा भेजना चाहिये। इस विचार में बेसुधि और विह्वल हो जाया करते थे तब एक भगवद्भक्त ब्रज को जाने लगा, तो उसको यह कपड़ा देकर बड़ी अधीनता से विनय किया कि इस कपड़े का समाचार गोसांई को न पहुंचे क्योंकि यह कपड़ा उनकी दासियों की दासी के योग्य भी नहीं है, इस लिये भंडार में डाल देना। उस आदमी ने ब्रज में आकर वह रजाई भंडारी को देदी और भंडारी ने उसे बेमर्याद से कपड़ों के नीचे डाल दिया। श्रीनाथ जी को नन्दस्वरूप अपने बाबा की भेजी हुई वह रजाई तोशखाने में पहुंच कर भी जब न मिली तो वे जाड़े से कांपने लगे। गोसांई जी ने जरबफ्त और कीमखाब आदि की रजाई और लिहाफ उढ़ाये श्रीनाथ जी का जाड़ा न गया। तब दुशाले, रूमाल आदि

उढ़ाये गये परन्तु जाड़ा वैसा ही रहा। आग की अंगीठी लाई गयी, सब दरवाजे बन्द कर दिये गये परन्तु जाड़ा न गया गोसाईं जी ने विचार कर भंडारी और कारबारियों से कहा कि भाई! यह शीत नहीं है, किसी की प्रीति है, कहो किस भक्त ने क्या २ जड़ावर भेजी है। उन लोगों ने जिन २ राजा, उमराव और दूसरे लोगों की भेजी हुई जड़ावर थी, दिखाई और उढ़ाई परन्तु कुछ कार्य सिद्ध न हुआ। तब भंडारी को स्मरण हुआ और उसने गोसाईं जी से कहा कि विदुरदास कंगाल होगया है, उसने एक मोटे थान की रजाई भेजी है, वह भंडार में रक्खी है। गोसाईं जी ने मंगवा कर उढ़ाई तो तुरन्त जाड़ा छूट गया। तिलककार भक्तमाल शिक्षा करते हैं कि इस प्रीति और भक्तवत्सलता का विचार करके भगवत् में मन लगाना चाहिये। यदि यह पद सुन कर भी अभागा मन भगवत् में न लगे, तो निस्संदेह वह पत्थर से भी अति कठोर है; वरु वज्र समझना चाहिये।

कुं० ब्रह्मादिक जा ईश का, पाया नहीं पार।
मायापति विश्वेश की माया अपरम्पार॥
माया अपरम्पार, भक्त बश जाड़ा खाता।
भक्तों को बहु मान, प्रेम का पाठ पढ़ाता॥
भोला! गुण गाय, सदा जाके शंकरादिक।
सोही भज विश्वेश, भजें जा कहँ ब्रह्मादिक॥

आदर्श-मित्र

गतांक से आगे

[ले० श्री गंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु']

कृष्ण के मुख से उक्त प्राचीन कथा को सुन कर सुदामा की शंका दूर हो गई और उनके आदर सत्कार एवं शील स्वभाव को देखकर मन ही मन अपने भाग्य की सराहना करते हुये प्रेम से विह्वल होकर गद्गद् स्वर से बोले। नाथ! हमें क्यों लज्जित करते हो। जितना सत्कार हमारा आपने किया है इतना तो कभी मेरे भाग्यमें लिखा भी न था आपके साथ में मित्रता होना मेरे पूर्व पुण्य जनित कर्मों का फल है। नाथ! त्रिभुवन आपकी पूजा करता है और आप एक अकिंचन ब्राह्मण की पूजा करें यह कैसा आश्चर्य है। आपका आदि अन्त बड़े२ नहीं जानते। आप जगत् के माता पिता हैं। आप का नाम जपकर लोग संसार सागर से तर जाते हैं। संसारी जीव आपकी शक्तियों को नहीं जान सके आपसे चराचर जगत् प्रकाशित है और आप स्वयं प्रकाश हैं आपने संसार की रक्षा के लिये मनुष्य शरीर धारण किया है। मेरे बड़े भाग्य है जो आपका दर्शन पाया।

कृष्ण ने सोचा कि सुदामा तो दूसरे रास्ते पर जा रहे हैं जिस कार्य के लिये इन्हें इनकी गृहिणी ने भेजा है वह तो ये भूले ही जा रहे हैं अतः इन्हें ठीक रास्ते पर लाना चाहिये। ऐसा विचार समझ कर मायामयी मृदुमुस्कान से सुदामा के ऊपर माया का प्रकाश डालते हुए बोले मित्र! अब, इन बातों को जाने दो। यह बताओ हमारी भाभी ने हमारे लिये क्या सौगात भेजी है, सद्गृहणी पुत्र तुल्य अपने देवर के लिये कुछ न कुछ न भेजें यह हो नहीं सकता इसलिये जो वस्तु उन्होंने हमारे लिये भेजी हो वह चुप चाप हमें दे दो लुकाने छिपाने की जरूरत नहीं है।

कृष्ण की बात सुनकर सुदा बड़े लज्जित हुए और सोचने लगे कि मैं कैसे इतने बड़े मनुष्य को चार मुट्ठी चांवल भेट दूं? बड़े बड़े राजा जिसके यहां नाना प्रकार की भेंटें ले लेकर उपस्थित

होते हैं, उन्हें मैं चांवल दूंगा तो ये और देखने वाले क्या कहेंगे। कृष्ण का वैभव देखकर सुदामा को उन्हें चांवल देने का साहस न हुआ उसका मुँह लज्जा से लाल हो गया और वह चांवल की पोटली जो अब तक प्राणों के माफिक बगल में छिपाये रखी थी और छिपाने लगे कृष्ण ताड़ गये कि कुछ है तो सही किन्तु ये संकोच वश देने में हिचकते हैं इनको मित्रता के बीच में कपट या संकोच की कोई आवश्यकता नहीं इससे सर्वथा हानि ही हानि है। पहिले भी एक बार इन्होंने गुरु गृह में यह गलती की थी जिसका परिणाम ये भोग रहे हैं और अब फिर वही गलती करना चाहते हैं। अब की मैं इन्हें इस गलती से बचाऊंगा और अवश्य बचाऊंगा लोग कहते हैं कि कृष्ण का मित्र होकर भी सुदामा दुःखी है यह बात मेरे हृदय में तीर सी लगती है। इसी प्रकार सुदामा जब किसी से कहते हैं कि मैं कृष्ण का मित्र हूं, तो लोग हंसने लगते हैं अभी सत्यभामा ने भी ताना मारा था इससे मेरी अप्रतिष्ठा होती है। इतने दिनों तक इन्हें धनी होने की चाह नहीं थी अतः मैंने भी ध्यान नहीं दिया अब इसी निमित्त से ये अपनी पत्नी के भेजे हुऐ मेरे यहाँ आये हैं। यद्यपि इन्हें इसकी कुछ परवाह नहीं है किन्तु इनकी गृहिणी तो धन चाहती है अतः इनको सन्तुष्ट करना मेरा सर्व प्रथम कर्तव्य है।

सुदामा के लाख छिपाने पर भी कृष्ण ने उनकी बगल में दबी हुई छोटी सी पोटली चकमा देकर खींचली और खोल कर भुनी-मिश्रित चाँवल खाते हुए हँस कर सुदामा से बोले क्यों मित्र! यह कपट, भौजी ने हमें प्रसाद भेजा और तुम अब तक उसे छिपाये रहे क्या इन चावलों को तुमने कुछ तुच्छ समझ रखा है। इनके समान तो और कोई वस्तु हो नहीं सकी है। जानते हो ये चावल हमारी भौजी के भेजे हुए हैं। एक सद्गृहणी को जो वस्तु भेजना चाहिये वही हमारी भाभी ने भेजी है। मित्र! मुझे प्रेम से जो एक फूल या फल दे देता है मैं उससे प्रसन्न हो जाता हूं और बिना प्रेम के लाखों मन उत्तम २ व्यञ्जनों के देने से भी प्रसन्न नहीं होता। मैं वस्तु का भूखा नहीं किन्तु प्रेम का भूखा हूं आपने सुना होगा कि दुर्योधन ने मेरे लिये नाना प्रकार के व्यंजन बनवाये थे किन्तु प्रेम रहित होने के कारण मैं उसके यहां खाने नहीं गया और विदुर के यहां प्रीतिपूर्वक दी हुई बासी सूखी भाजी खाके संतुष्ट हो गया था यह आप हमारे लिये लाये हैं इन्हें थोड़ा मत समझो इसमें मैं क्या, संपूर्ण विश्व तृप्त हो सकता है। जैसा स्वाद इन चाँवलों में है वैसे तो आज तक मैंने खाये ही नहीं।

पोटली खोलते समय कपड़ा फटा होने के कारण कुछ चाँवल जमीन पर गिर पड़े थे उन्हें कृष्ण खुद उठाने लगे और रानियों को आज्ञा दी कि इनका एक २ दाना उठाकर हमें दे दे जिससे कोई दाना पैरों के नीचे न पड़े। जानती नहीं हो ये चांवल हमारे मित्र के लाये हुए हैं। रुक्मिणी ने सोचा कि दो मुट्ठी चांवल खाकर इन्होंने सुदामा को काफी सम्पत्ति देदी अब इन्हें रोकना चाहिये अन्यथा मेरा अपमान होगा। अतः कृष्ण का हाथ पकड़ कर बोली प्राणनाथ! क्या हमारी जिठानी की भेजी हुई सौगात अकेले ही अकेले खा जाओगे हम लोगों को इसमें से कुछ हिस्सा न दोगे आप बहुत खा चुके अब इतने चाँवल हम लोगों के लिये रहने दो। कृष्ण रुक्मिणी का तात्पर्य समझ गये और चांवल खाना बन्द कर दिया।

कृष्ण ने द्वारिका में इस बात की घोषणा करदी थी एक ब्राह्मण (कंगाल को अपना मित्र

बनाने से उन्हें आज कल के बड़े आदमियों के सदृश अप्रतिष्ठा का डर न था) वे तो इसमें अपनी प्रतिष्ठा समझते थे। कि हमारे एक प्राचीन मित्र आये हुए हैं जिसे इनका दर्शन करना हो या उनसे संभाषण करना हो वह सहर्ष कृष्ण भवन में आवें। घोषणा सुन कर बहुत से कुटुम्बी और नगर निवासी कृष्ण भवन में उपस्थित हुए और "नाम बड़ा दर्शन थोड़े" कहावत को चरितार्थ करने वाले मित्र को देख कर बड़े चकित हुए और आपस में कहने लगे कि देखो कि यही कृष्ण के मित्र हैं इनके समान तो संसार में हमें कोई गरीब दिखता ही नहीं है जो इतनी दूर से कृष्ण के लिये मुट्ठी भर चावल लाये हैं और कृष्ण को तो इनसे भी बढ़कर लोभी समझना चाहिये जो अकेले चावलों को खाकर उनकी बड़ाई कर रहे हैं। कृष्ण इन लोगों की काना फूसी का संकेत समझ गये और बोले सज्जनो! यह तुम लोगों का सौभाग्य है जो तुम्हें इनके दर्शन हुए हैं इन चावलों का स्वाद आप लोग नहीं जान सकते हैं पहर भर रात व्यतीत हो जाने पर सब लोग कृष्ण की प्रशंसा करते हुए अपने २ घर गये और कृष्ण ने सुदामा को ले जाकर शयनागार में अपने पलंग के समीप दूसरा पलंग बिछवा कर उनसे लेटने की प्रार्थना की और रुक्मणी से कहा कि तुम इनके पैर दाबो। अर्धरात्रि तक दोनों में लड़कपन की बात चीत होती रही जब सुदामा सो गये तो रुक्मणी को सोने की आज्ञा देकर आप विचारने लगे कि यद्यपि सुदामा को द्रव्य की चाहना नहीं है वह ईश्वर ध्यान में ही मस्त रहते हैं किन्तु इनकी स्त्री ने धन के लोभ से इन्हें जबरदस्ती हमारे पास भेजा है इसलिये ब्राह्मण की इच्छा पूरी करनी चाहिये ऐसा विचार करके कृष्ण ने योग शक्ति के द्वारा सुदामा की झोंपड़ी को महल के रूप में परिणत करके धन धान्य से भर दिया। और यह सोच कर कि जब मेरी नगरी का नाम द्वारिकापुरी है तो मेरे मित्र की नगरी का नाम सुदामा पुरी क्यों न हो गांव को पुरी के रूप में परिणत कर दिया। ब्राह्मणी सुशीला को रानी और सुदामा के बालकों को राजकुमारों के सदृश कर दिया। सुदामा के पास में एक कौड़ी भी नहीं थी, जैसे आये थे वैसे ही उन्हें लौटा दिया। क्यों? इसलिये कि धन की इच्छा तो ब्राह्मणी को थी, सुदामा की न थी और ढोने ढुलाने में सुदामा को कष्ट होता अथवा जितना धन कृष्ण सुदामा को देना चाहते थे उतना देने पर कुटुम्बी नाराज होते या न देने देते इसी लिये अपने गुप्त धन से (ऐश्वर्य शक्ति के द्वारा) बहुत सा धन सुदामा के घर पर भिजवा दिया। कई दिन तक आतिथ्य सत्कार करने के बाद नित्य कृत्य से निवृत्त हो के एक दिन सुदामा ने कृष्ण से विनय पूर्वक निवेदन किया कि मित्र! कई दिन हो गये अब आज्ञा दीजिये तो घर जाऊं! और कुटुम्ब के भोजनादि का प्रबन्ध करूं संभव है घर के लोग दुःखी हों क्योंकि मेरे सिवा उन्हें कोई आधार नहीं और मैं यहां हूं। यह तो आप जानते ही हैं कि भिक्षा मांगकर लाना प्रति दिन का काम है। और ईश्वर को अर्पण करके उसे पाना मेरा (सुदामा को यह कब मालूम था कि मुझे अब भिक्षा न करके राज्य करना होगा)। कृष्ण ने उदास होकर उत्तर दिया कि मित्र! मैं कैसे कहूं कि तुम जाओ मित्र से मित्र का वियोग होना बड़ा दुःख प्रद होता है। आपके दर्शन से इतने दिन बड़े आनन्द से कटे अब फिर वही भौतिक चिन्ता मुझे घेर लेगी। मैं तो चाहता था कि आप कुछ दिन और रहते किन्तु आप जाना चाहते हैं। अच्छा! यदि आप नहीं मानें तो जाइये, भाभी से हमारा

प्रणाम कहना और बच्चों को हमारी ओर से प्यार करना। इतना कहते कहते कृष्ण का गला भर आया और सुदामा से लिपट कर गद्गद् कंठ से बोले, मित्र सदा हमारी याद रखना।

सुदामा कृष्ण के गले से लिपटकर खूब रोये और बोले नाथ (अब की उन्होंने मित्र नहीं नाथ कहा) आप से न मेरा कभी वियोग हुआ है न हो सकता है ? आप सदा मेरे हृदय में रहते हैं और रहेंगे यह श्याम मूर्ति जीवन पर्यन्त इन नयनों से अलग नहीं हो सकती। इस अकिंचन ब्राह्मण पर सदा दया रखियेगा। इतना कहते उनका गला रुंध गया। यदुवंशियों और रानियों ने सुदामा को प्रणाम किया सुदामा को विदा करने के लिये कृष्ण बहुत दूर तक चले सुदामा उन्हें बारम्बार लौटने का आग्रह करते थे किन्तु वे न लौटते थे। जब सुदामा वहीं खड़े हो गये तब कृष्ण को भी विवश होकर रुक जाना पड़ा। उन्हें आलिंगन किया और विदा किया स्वयं थोड़ी देर तक वहीं खड़े २ सुदामा की ओर देखते रहे जब वे दिखाई न दिये तब वहाँ से घर की ओर लौटे किन्तु फिर भी बारम्बार लौट२ कर सुदामा को देखते जाते थे। कृष्ण कष्ट के साथ घर लौटे और बड़ी मुशकिल से भोजन किया।

सुदामा जी कृष्ण से मिलकर उन्हीं का स्मरण करते हुए जैसे तैसे वहां से चले, और रास्ते में ही कृष्ण की प्रशंसा करते जाते थे, कहते थे देखो, कृष्ण को धन्य है, कहाँ महादरिद्र मलिन शरीर वाला मैं और कहाँ कृष्ण, तो भी उन्होंने मुझे हृदय लगाकर भेंटा अपना स्वर्ण जड़ित शय्या पर मुझे बैठाला इष्ट देव के सदृश मेरी पूजा की इसका बदला मैं तीन जन्म में भी नहीं दे सकता अवधि रहित स्नेह दिखाया कौन पुरुष संसार में कर सका है, किन्तु जिस कार्य के लिये सुशीलाने हमें यहां भेजा था वह कुछ न हुआ कृष्ण ने द्रव्य के नाम एक पाई भी मुझे न दी, संकोच वश मैं भी उनसे कुछ नहीं कह सका जिस तरह हाथ हिलाते आया था उसी तरह जा रहा हूं। ब्राह्मणी को क्या दूंगा और क्या कहूंगा और कैसे उसे मुँह दिखाऊंगा। जन्म भर जिस मित्र की मैंने उसके सामने प्रशंसा की है उसके विषय में उसकी क्या धारणा होगी ग्रामवासियों के पूछने पर क्या कहूंगा कि मित्र ने क्या दिया।

फिर उन्होंने सोचा कि धन से नाना प्रकार के कष्ट होते हैं। शायद कृष्ण ने जान बूझकर अपना मित्र समझ कर मुझे धन नहीं दिया। क्योंकि धनी मनुष्य सदा अभिमान से भरा रहता है कभी ईश्वर का ध्यान नहीं करता। निर्धन मनुष्य हरि भक्त और सुशील होता है। मित्र ने मेरे ऊपर बड़ी दया की जो मुझे धन नहीं दिया अन्यथा मैं भी सांसारिक झगड़ों में फंस जाता। मित्र का धर्म है कि मित्र को कष्ट से बचावे यही कृष्ण ने किया। मैंने कृष्ण का दर्शन पाकर क्या नहीं पा लिया। मेरे वास्ते यह गरीबी ही अच्छी है। जिसमें ईश्वर का भजन होता है। मेरी बुद्धि भी ईश्वर ने उस समय अच्छी कर दी जो मैं ने चलते समय उन से कुछ मांगा नहीं अन्यथा धन तो मिलता किन्तु वे मुझे लोभी समझते। घर पहुंच कर ब्राह्मणी को मैं किसी न किसी प्रकार समझा लूंगा।

इस प्रकार सोचते विचारते सुदामा अपने गांव के नजदीक पहुंचे किन्तु वहाँ की छटा देखकर इन्हें आश्चर्य हुआ। कहने लगे कि क्या मैं मार्ग भूल कर फिर द्वारिका पहुंच गया किन्तु वहां तो समुद्र है। या मेरी झोपड़ी किसी ने ब्राह्मणी से छीनली किन्तु ऐसा हो नहीं सकता इतनी जल्दी ऐसा महल बन जाना असंभव है क्या

मैं कुछ दूसरा तो नहीं देख रहा हूँ। संभव है यह दूसरा गांव हो। मगर नहीं अपने गाँव के चिन्ह मुझे खूब याद हैं। यही मेरा गांव है फिर मेरी झोपड़ी कहाँ गई क्या गिर गई ऐसा महल तो इस गांव में था ही नहीं। द्रव्य के लोभ में पड़कर मैंने अपना कुटुम्ब भी खोया। पतिव्रता ब्राह्मणी भी न जाने कहां चली गई अब मैं क्या करूं। कृष्ण क्या तुम्हारी भेंट का यही फल है कि जो था वह भी चला गया मिलना मिलाना तो दरकिनार रहा। अच्छा जरा इस महल की ड्योढ़ी पर चल के पूछूँ तो यह किसका महल है और इस गांव का क्या नाम है? बेचारे डरते डरते गये और पूछा, द्वारपाल ने उत्तर दिया ब्राह्मण देवता इस ग्राम का नाम सुदामापुरी है। और यह महल सुदामा का है वे द्वारिका में अपने मित्र से मिलने गये हैं कहिये आपका क्या काम है मैं महल में खबर कर दूं। अब सुदामा और घबड़ाये कि यह द्वारपाल क्या ऐन्द्रजालिक बातें कह रहा है। भाग्यवशात् सुशीला ने इनको द्वारपाल से बातें करते हुए छत पर से देख लिया और दासियों को आज्ञा दी कि हमारे पति देवको (जो द्वार पर खड़े हुए हैं) भीतर लिवालाओ। दासियां दौड़ कर उनके पास पहुंचीं और उनसे विनय पूर्वक भीतर चलने के लिये कहा किन्तु उन्हें विश्वास नहीं हुआ और वे वहीं खड़े रहे। अन्ततः सुशीला स्वयं आई और उनके चरणों पर गिरकर प्रार्थना करने लगी, नाथ! भौंचके से क्या सोच रहे हो? भीतर चलो यह महल आपका ही है तुम्हारे मित्र की कृपा से यह सब संपत्ति तुम्हें मिली है यह महल भी उन्हीं की कृपा का फल है। उन्होंने ही ये सब वस्तुयें यहाँ भेज दी हैं तुम्हारे मित्र दान शिरोमणी और दीनों पर दया करने वाले हैं। मैं आपकी सुशीला हूं ये आपके पुत्र हैं और ये सब दासियां हैं। आप किसी प्रकार की शंका न करके भीतर चलिये इतने पर भी सुदामा को विश्वास नहीं होता था। हो कैसे? सुशीला को वे हीना दीना ब्राह्मणी के रूप में छोड़ गये थे, और अब वह रानी के रूप में थी, किन्तु ध्यान पूर्वक पुत्रों को और सुशीला को देखने से उन्हें विश्वास हुआ कि यह मेरी धर्म पत्नी सुशीला है। सुशीला उनका हाथ पकड़ कर भीतर ले गई और यथायोग्य उनका पूजन करके भोजन कराया। और फिर अपने यहाँ का यथाक्रम हाल बताया और द्वारिका का हाल उनसे पूछने लगी।

सुदामा ने आद्योपान्त वहां का समाचार सुशीला को सुनाया इतना धन पाकर भी सुदामा का मन प्रसन्न न था वे कुछ चिन्तित से दिखाई देते थे। अतः एक दिन सुशीला ने हाथ जोड़ कर उनसे पूछा नाथ! कृष्ण का दिया हुआ इतना ऐश्वर्य पाकर भी अब आप उदासीन से दिखते हैं। इसका क्या कारण है। जिस धन के लिए लोग लालायित रहते हैं उसे पाकर भी आप उदास बने रहते हैं। सुदामा ने उत्तर दिया सुशीले! यह धन नहीं, बंधन है, इसके चक्कर में जो मनुष्य पड़ जाता है उसका छूटना बड़ा कठिन है। भिक्षा मांग कर मैं ईश्वर का स्मरण कर सकता था किन्तु अब कर सकूँगा या नहीं इसमें संदेह है। इसी लिये मैं उदास हूं क्योंकि मनुष्य का जन्म केवल सांसारिक सुख भोगने के लिए नहीं है ईश्वर स्मरण के लिये है। बड़ी कठिन तपस्याओं के द्वारा यह प्राप्त होता है। मेरा तो तुमसे भी यही कहना है कि तुम इस धन को अपना न समझकर कृष्ण का समझो और उन्हीं के नाम पर दान धर्मादि में इसे खर्च करती रहो केवल शरीर मात्रा के लिए ही अपने काम में लाओ। और कृष्ण का भजन करो।

कृष्ण ने, बिना मांगे इतना धन सुदामा को

दिया किन्तु फिर भी उसे थोड़ा ही समझा और इसी लिये उन्होंने सुदामा से इसके विषय में स्पष्ट कुछ नहीं कहा। सच है बड़े लोग यदि किसी को कोई वस्तु देना चाहते हैं तो मुख से नहीं कहते, चुपचाप दे देते हैं या उसके घर में भेज देते हैं।

श्री रूपकलाष्टक

[ले० श्री दामोदरसहायसिंह एल० टी० कविकिंकर]

सोरठा

(श्री) सिय पिय गुन गान करत सदा दुख दुंद हर।
(भ) गत सुजान अमान गादी बिनु मुक मनि अपर ॥१॥
(ग) विमति रति बिन नेम चातक सम बादर नवल।
(वा) रत योगह उमे तन मन धन हरि पद कंवल ॥ २ ॥

दोहा

(न) र अबोध चैतन्य कर सृजन कलप तरु छांह।
(प्र) बल बाद सम तरनि कर रूप कला की बांह ॥ ३ ॥
(सा) हस लहत अधीर जन गहत गैल पथ हीन।
(द) इत भवी दुम्बन अजन करत नाम तव "दीन" ॥४॥

सोरठा

(रू) प मनोहर गोर छाबी तनु कुम स्वर्न सम।
(प) रम तपस्या गोर तेज पुंज फूली चरम ॥ ५ ॥
(क) रत माहि कठोर दिलके कोमल कमल ज्यों।
(ला) लित सिय चकोर पालित सिय [illegible] करन त्यों ॥६॥

दोहा

(श्री) न गयो साके को तजि लौकिक साकेत।
(न) हि सोहात संसार मंह हमैं कछुहु तोहि हेत ॥ ७ ॥
कर्म चक्र मगधारि हरि भगति गंग हर कौन।
ज्ञान कमंडलु ब्रह्म धरि नव विरंच यहु 'दीन' ॥८॥

सोरठा

सिय सहचरी प्रधान प्रेम भगति साहित भरी
श्री प्रसाद भगवान रूप कला हरि रस हरी ॥९॥

सब छन्दों के प्रत्येक चरण में समान्त्य या विषमान्त्य अनुप्रास है। छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास अधिकांश छन्दों में है। शब्दालंकारों के सिवा पहले से सातवें छन्द तक आद्याक्षरी बहिर्लापिका चित्रालंकार है जैसा कि कोष्ट बद्ध अक्षरों से स्पष्ट है। इन अक्षरों से श्री रूप कला जी का विस्तृत नाम निकल आता है। अब अर्थालंकार देखिये। पहले छन्द में हीन तद्रूप रूपक है। दूसरे में पूर्णोपमा है। तीसरे से नवें तक सब छन्दों में सातवां छोड़कर उल्लेख अलंकार है। चौथे में निरंग रूपक है। सातवें छन्द में विरोधाभास है। आठवें छन्द में उल्लेख तो है ही उत्प्रेक्षान्तर्गत सम अभेद रूपक भी है। विविध अलंकारों के कारण भाषा और भाव दोनों चमत्कृत हो उठे हैं।

सम्पादक

भक्त संग का प्रभाव

[ले० आचार्य मदनमोहन गोस्वामी भागवत् रत्न]

भक्त सङ्ग का आश्चर्यमय प्रभाव है। मायाबद्ध भ्रान्त, मनुष्य केवल भक्त सङ्ग रूपी नौका का अवलम्बन कर, प्रबलतरङ्गों से व्याप्त इस भवसमुद्र को उत्तीर्ण हो सकता है। तथा श्रीभगवान् के अभय चरण कमलों के आश्रय लेने का अधिकारी हो सकता है। इसी से श्रीशङ्कराचार्य जी ने जीवों के मोह को दूर करने के अभिप्राय से गम्भीर ध्वनि से इस वाक्य की वर्णना की है।

“क्षणमिह सज्जन सङ्गतिरेका ।
भवति भवार्णव तरणे नौका ॥”

श्रीचैतन्य चरितामृत में श्रीकृष्णदास गोस्वामी जी ने उक्त वाक्य की प्रतिध्वनि वर्णन की है। यथा:-

“साधुसङ्ग साधुसङ्ग सर्व शास्त्रे कय ।
लव मात्र साधु सङ्गे सर्व सिद्धि हय ॥”

भक्त सङ्ग पाप समूह रूपी कण्टक को जड़ से उखाड़ कर हृदय क्षेत्र को सरस बना देता है। उस क्षेत्र में ‘भक्ति बीज’ वपन होता है। हरिनाम कीर्तन जल से सिंचन करने पर “भक्ति बीज” अंकुरित पल्लवित, और पुष्पित हो जाता है। क्रमशः उसमें प्रेम रूपी फल लगता है। भाग्यवान ही भक्ति वृक्ष के प्रेम रूपी फल के आस्वादन का अनुभव कर स्वयं धन्य होता है।

पाठकों की अवगति के लिए एक परमोज्ज्वल दृष्टान्त से भक्त संत की अलौकिक महिमा का परिचय देता हूं।

यवन वंशोद्भव वैष्णवाग्रगण्य हरिनाम महिमा के प्रचारक श्रीहरिदास महोदय “बेनापोल” नामक स्थान के जन शून्य वन में एक छोटी सी पर्णकुटी बना कर रहते थे, उस समय वे दैनिक तीन लक्ष हरिनाम का जप किया करते थे। उस देश के राजा “रामचन्द्र खाँ” नामक थे। वह वैष्णवों के बड़े द्वेषी थे। हरि कीर्तन करने वालों को कष्ट पहुंचाना उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था। हरिदास का नाम कीर्तन करना उनको बहुत ही खटकता था। हरिदास के भजन में विघ्न डालना उनको कलंकित करना चाहते थे रामचन्द्र खाँ अपने मन में विचारने लगे। विचार के स्थिर करके एक वेश्या को सिखला कर हरिदास के पास भेजा। रामचन्द्र खाँ की आज्ञा से रात्रि के समय हरिदास की पर्णकुटी में वेश्या पहुंची। हरिदास को हाव भाव से मुग्ध करने की चेष्टा करती हुई मधुर स्वर से बोली। हरिदास? आपका यह नवयौवन है। आपके सौन्दर्य को देख कर कौन ऐसी रमणी है जिसका चित्त मोहित न होता हो। मैं आपके शरण में आई हूं। मुझे अपनी दासी बनाकर अपनी शरण में स्थान दो।

हरिदास के चित्त में अप्राकृत मोहन मूर्ति का प्रकाश पड़ रहा था। उनके चित्त को एक प्राकृत वेश्या कैसे मुग्ध कर सकती है। हरिदास उस प्राकृत वेश्या के कुत्सित भावों को जान गये। और भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि प्रभो! इसका उद्धार कैसे होगा। हरिदास का इतना विचारना था कि, उसी समय हरिदास को उत्तर मिला कि हरिदास! हरिनाम की महिमा विचित्र है। अपने अभीष्ट उत्तर को पाकर, हरिदास वेश्या से बोले कि, आपने जो प्रार्थना की है वह ठीक है परन्तु मेरा एक नियम यह है कि, जब तक मेरी तीन लक्ष हरिनाम की संख्या पूर्ण न होवेगी तब तक आपकी अभिलाषा पूर्ण करने में असमर्थ हूं अतः आप बैठें संख्या पूर्ण करने के बाद आपकी अभिलाषा पूर्ण करूंगा। वेश्या इस वाक्य से सन्तुष्ट होकर बैठ गई हरिनाम सुनने लगी नाम सुनते २ सारी रात्रि बीत गई। प्रातःकाल होते ही वेश्या रामचन्द्र खाँ के पास पहुंची और अपनी सारी कथा उनको सुनाई रामचन्द्र खाँ की आज्ञा से वेश्या पुनः दूसरी रात्रि में हरिदास के पास पहुंची। उस दिन भी हरिदास ने अपनी मधुर वाणी से वेश्या को संतोष दिया तथा हरिनाम करने लगे। उस रोज भी सारी रात्रि व्यतीत हो गई। प्रातः हरिदास वेश्या से बोले मैं आज भी आपकी अभिलाषा पूर्ण करने में असमर्थ हुआ संभव है कि आगामी रात्रि में पूर्ण कर सकूं वेश्या उस रोज भी चली गई। आज तीसरा दिन

है क्योंकि उस समय पर वेश्या -पुनः उपस्थित हुई। और ठाकुर हरिदास का नाम कीर्तन सुनने लगी। आज वेश्या की चित्तवृत्ति हरिनाम के प्रभाव से बदल गई और हरिदास के चरणों में गिरकर गद्-गद् भाव से कहने लगी भगवन्! मैं बड़ी अपराधिनी हूं। मेरा अपराध आप क्षमा करें यह कहती हुई रामचन्द्र खाँ की सारी दुष्टता कह सुनाई। और कहने लगी मेरे प्रति आप सदय होकर मेरे उद्धार का रास्ता बताइये।

वेश्या के ऐसे वचन सुनकर हरिदास भी आनन्द में निमग्न हो गये। और भगवान की अहेतुकी कृपा की सराहना की। हरिदास ने वेश्या से कहा कि, तुमने इस वेश्या वृत्ति से जो धन उपार्जन किया है वह सब भगवद्भक्तों की सेवा में दान कर दो और इस पर्ण कुटी में रह कर हरिनाम कीर्त्तन करो यही तुम्हारे उद्धार का मार्ग है।

वेश्या को ऐसा उपदेश देकर हरिदास उस स्थान को छोड़ गये। वेश्या भी वहां हरिनाम कीर्त्तन करने लगी। यह वेश्या एक परम वैष्णवी होगई। इसी से चैतन्य चरितामृत में लिखा है:-

"प्रसिद्ध वैष्णवी हईला परम महान्ती।
बड़ बड़ वैष्णव तार दर्शने यान्ति।।"

यही भक्त सङ्ग का प्रभाव है।

ईश्वर और अन्य देवता

[ले० प्रो० राधेश्याम द्विवेदी]

सनातन धर्म का यह सिद्धान्त बड़ा प्राचीन है कि किसी भी देवता की आराधना करो वह ईश्वर की ही आराधना है, कारण कि हमारे यहां प्रत्येक देवता को ईश्वर का ही स्वरूप माना है। वेद, उपनिषद्, पुराण, इतिहास तथा अन्य शास्त्र ग्रन्थों में यही स्पष्ट उपदेश दिया गया है। ऋग्वेद में कहा है-

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः'।
(ऋ० १, १६४-४६)

अर्थात् ईश्वर एक है किन्तु विद्वान लोग उसीको यम, वायु, (मातरिश्वा) कहा करते हैं। केनोपनिषद् १-५-८ के

'तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदंतदिदमुपासते'।

का भी यही तात्पर्य है श्रीमद्भागवत् दशम स्कन्धपूर्वार्द्ध के ४० वें अध्याय में महापुरुष स्तव में भक्तराज अक्रूर द्वारा भी यही मत प्रतिपादन हुआ है।

'त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम्।
बह्वाचार्य विभेदेन भगवन्समुपासते॥
(भागवत १० पू० ४०-८)

महाभारत के नारायणीयोपाख्यान में भी यही कहा गया है:-

'ब्रह्माणं शितिकण्ठं च याश्चान्या देवताः स्मृताः।
प्रबुद्ध चर्या सेवन्तो मामेवैष्यन्ति यत्परम्॥
(महा० शान्ति ३४१-३५)

तथाच ये यजन्ति पितॄन्देवान् गुरूंश्चैवातिथींस्तथा,
गाश्चैव द्विज मुख्यांश्च पृथिवीं मातरं तथा।
कर्मणा मनसा वाचा विष्णुमेव यजन्ति ते॥
महा० शा० ३४५ २६-२७

अर्थात् ब्रह्मा शिव या अन्य देवताओं को भजने वाले साधु पुरुष भी मुझ में ही आ मिलते हैं। तथा देव पितृ, गुरु, अतिथि, ब्राह्मण और गौ प्रभृति की सेवा करने वाले विष्णु की ही आराधना करते हैं। श्रीशिवगीता के १२ अध्यायके ४ श्लोक का भी यही तात्पर्य है। अध्यात्म शास्त्र का भी यही सिद्धान्त है और श्रीमद्भगवद्गीता में तो

अनेकों बार श्रीमुख से परमात्माने यही व्यक्त किया है कि मन में किसी भी भावना या कामना को रख कर किसी भी देवता की आराधना की जावे। वह परमेश्वर की ही आराधना है और परमेश्वर ही उसका फल देता है, अन्य देवता नहीं। स्वयं परमात्माने कहा है।

येऽप्यन्य देवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधि पूर्वकम्। २३-८
अहं हि सर्व यज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभि जानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥ २४। ९

अर्थात् हे अर्जुन! जो लोग अन्य देवताओं का भक्त से श्रद्धावान होकर यजन करते हैं, वे अविधि पूर्वक होने पर भी मेरा ही यजन करते हैं। मेरी ही आराधना करते हैं; क्योंकि (भगवान कहते हैं) मैं सब यज्ञों का भोक्ता तथा उनका स्वामी मैं ही हूं। परन्तु वे लोग मुझे नहीं पहिचानते हैं।

इसी लिये ऐसा करते हैं। देवताओं का व्रत यजन करने वाला देवताओं के पास जाता है। पितरों का पितृओं के पास। जब भगवानने स्वयं पुनः यहां भिन्नता सी बतलाई तो अर्जुन सन्देह में पड़ गये और स्पष्ट उन्होंने पूछा कि:-

“केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया’।

अर्थात् आपका किन २ भावों में या किन किन विभूतियों से चिन्तन करूं, कारण कि मुझे न तो देवताओं के पास जाना है न पितरों के पास ही मुझे तो आपके चरणों में स्थान चाहिये। तब श्रीभगवान् उसे यही समझाते हैं कि यह सब भिन्न नहीं हैं सब में मैं ही व्याप्त हूं, और सब मुझ से ही उद्भुत हैं। श्रीमद्भगवत् गीता के दशम अध्याय में श्रीभगवान् ने निरंतर यही वर्णन किया है। आपने आरम्भ में ही कह दिया है।

‘अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।’ (गीता-अध्या १०

अर्थात् देवता और महर्षियों का सब प्रकार से मैं ही आदिकारण हूं. पुनः आगे कहते हैं कि यज्ञों में सब से महत्व का जो जप यज्ञ है वह मैं ही हूं, सर्पों में प्रधान जो वासुकि कहा जाता है, वह मैं ही हूं, दैत्यों में प्रह्लाद हूं पितरों में अर्यमा हूं गन्धर्वों में चित्ररथ हूं। वृक्षों में अश्वत्थ हूं पक्षियों में गरुड़ हूं महर्षियों में भृगु हूं अक्षरों में अकार हूं और आदित्यों में विष्णु हूं कहां तक कहूं जो कुछ वैभव या प्रभाव से युक्त हो वह मेरे ही तेज से उत्पन्न हुआ है।

‘यद्यद्विभूतिमत्सत्वं तत्तेजोंशसम्भवम्। गी०-१० ४१

इतना कहते हुए भी श्रीभगवान् ने अपनी सर्व व्यापकता को स्पष्ट करने के लिये विश्वरूप दर्शन से अर्जुन को इसी सिद्धान्त की प्रत्यक्ष प्रतीति भी करा दी। अतः यह तत्त्व निर्विवाद एवं अति प्राचीन है। किन्तु मूढ़जन इस मूल तत्त्व को सत्य सिद्धान्त को नहीं पहचानते हुए कि ईश्वर सर्व व्यापी, सर्व साक्षी, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिवान् एवं अचिन्त्य है उसके नाम रूपात्मक व्यर्थ अभिमान में पड़ कर दुराग्रह पर उतारू हो जाते हैं। धर्म के मूल सिद्धान्तों में व्यापक दृष्टि न होने से साम्प्रदायिक झगड़े खड़े करते हैं। कोई कहते हैं भगवान की आराधना करो, दूसरे कहते हैं श्रीराम का भजन करो और शिव के दर्शन करना पाप है। तो कोई कहते हैं शिव में ही कल्याण करने की सामर्थ्य है। ये सब अज्ञान और मोह की दृष्टि है। ईश्वर की अनेक सगुण विभूतियों में से किसी एक विभूति के चिन्तन का साधन तो साम्य बुद्धि की पूर्ति के लिये मन को स्थिर करने के लिये है। प्रतिमा एक प्रकार का साधन मात्र है। चाहे भगवान विष्णु का चिन्तन करो या शिवलिंग की आराधना करो श्रीराम-कृष्ण आदि अवतारों की या साधु महात्मा

पुरुषों की प्रतिमा लो। चाहे मंदिरों में शिलामय या धातुमय मूर्ति को देखिये अथवा बिना मूर्ति का मन्दिर या मसजिद कुछ लीजिये ये सब लंगड़े की लाठी की तरह इस चञ्चल मन को स्थिर करने के लिये या कहिये कि चित्त की वृत्ति को ईश्वर की ओर झुकाने के लिये साधन मात्र हैं। जिनके ध्यान में ईश्वर का सर्व व्यापी स्वरूप नहीं आ सकता वे यदि ईश्वर के अव्यक्त और शुद्ध रूप को पहिचानने के लिये अनेक वस्तुओं में से किसी एक को साधन या प्रतिमा मानकर उपासना करें तो कुछ अनुचित प्रतीत नहीं होता। चाहे ॐ मन्त्र का जप किया जाय चाहे विष्णु, शिव, शक्ति, गणपति, भैरव, हनुमान की पूजा जाय, चाहे माता पिता की सेवा में ईश्वर का भाव माना जाय, चाहे विराट् पुरुष की उपासना की जाय, चाहे मसजिद में जाकर नमाज़ पढ़ी जाय, चाहे गिरजे में जाकर प्रार्थना की जाय वह सब है उसी एक अव्यक्त अचिन्त्य ईश्वर की उपासना ऐसा कोई स्थान नहीं जहां ईश्वर न हो, ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें ईश्वर न हो। इस संसार में दिखलाई देने वाले सब पदार्थ ईश्वर के ही रूप हैं। यह कौन और कैसे कह सकता है कि उनमें से किसी एक ही में ईश्वर है अन्य में नहीं। वह दूर भी है, समीप भी है सत और असत् होने पर भी वह दोनों से परे है। गरुड़ और सर्प, मूषक और बिलाव अर्थात् मृत्यु और मारने वाला विघ्न-कर्ता और विघ्न हर्ता भयकृत और भय नाशक शिव और अशिव सभी वही है, ये विभिन्न देवता उसकी ही शक्ति के द्वारा उसके किसी महत्वपूर्ण कार्य के लिये प्रादुर्भूत या अवतरित होते हैं। सृष्टि क्रम के अनुसार सब उसी एक शक्ति से आविर्भूत हुए हैं और सब उसमें मिलेंगे जिस तरह पारे को पटक दीजिये अणु अणु अलग हो जायगा किन्तु मिलाने से सब पुनः मिलकर वही पारा एक हो जायगा।

आधुनिक आधि भौतिक मतानुसार भी यह सिद्धान्त सिद्ध हो जाता है कि सब देवताओं की ईश्वर से एकता है अर्थात् सब देवताओं का उद्गम उसी एक शक्ति से है और वस्तुतः वे सब उसी एक के स्वरूप हैं, केवल नाम भेद है। उदाहरणार्थ प्रकाश, उष्णता गर्मी, प्रभृति सब का उद्गम स्थान सूर्य की किरणें हैं। इनके सबके नाम भिन्न भिन्न हैं, कार्य भिन्न भिन्न हैं, प्रत्येक पर व्याख्या के लिये वृहद् ग्रन्थ लिखे गये हैं इतना होने पर भी इन सब का कारण एक मात्र है, इसी प्रकार विभिन्न देवतागण अपने अपने गुणानुसार कार्य फल के दाता हैं किन्तु उन सबका उद्गम स्थान वह एक महान् शक्ति ईश्वर ही है जिसकी शक्ति देवताओं में ही नहीं समस्त प्राणीमात्र में विद्यमान है।

बुद्धि वाद से इस विषय को विस्तृत करना समय यापन मात्र है, ईश्वर का पूरा ज्ञान होने के लिये भक्ति और कर्म इन दोनों मार्गों के अतिरिक्त कोई तीसरा मार्ग नहीं। इस बात को सभी आस्तिक विद्वानों ने माना है। जो भक्ति मार्ग के सच्चे रहस्य 'भाव के भूखे हैं भगवान्' का पता लग गया वह दुराग्रही नहीं होता वरन वह उदार बुद्धि का हो जाता है। और उसकी यह धारणा हो जाती है कि किसी की प्रतिमा कुछ हो परन्तु जो लोग उसके द्वारा ईश्वर का यजन करते हैं सब एक ही ईश्वर में जा मिलते हैं कारण कि जब कोई मनुष्य एक बार भक्ति मार्ग से या कर्म या उपासना से चलने लगता है तो इस जन्म में कभी न कभी उसको ईश्वर स्वरूप का ऐसा यथार्थ ज्ञान हो जाता है कि, यह सब 'वासुदेवात्मक' ही है और इसी ज्ञान से अन्त में उसे मुक्ति मिल जाती है। इसलिये

ईश्वर से आशा पूर्वक अन्तिम प्रार्थना यही है कि भक्ति का, ब्रह्मज्ञान का और कर्तृत्व शक्ति का यथोचित मेल कर देने वाले सनातन धर्म के अनुसार ईश्वर का भजन पूजन करने वाले सत्पुरुष इस देश में फिर उत्पन्न हों जिससे यह देश ईश्वर की कृपा का पात्र बन कर ज्ञान और ऐश्वर्य के शिखर पर पुनः पहुंच जाय। ओ३म् शान्ति !

'कल्याण से उद्धृत'

ईश्वर प्राप्ति के उपाय

[ले० श्री डा० गौरीशंकर तथा देवेन्द्रकुमार जी गुप्त]

यदि अवलोकन किया जाय तो रहस्य का उद्घाटन इस प्रकार होता है कि प्रत्येक आस्तिक मनुष्य का उद्देश परमात्मा अथवा ईश्वर को प्राप्त करना है। कहना अनुचित न होगा कि ईश्वर की प्राप्ति के लिये प्रत्येक आस्तिक उत्सुक पाया जाता है। यद्यपि प्रत्येक की उत्सुकता हार्दिक नहीं होती, तथापि संसार के अधिकतर पुरुष ईश प्राप्ति अथवा ईश दर्शन की अभिलाषा रखते हैं। परन्तु उस अभिलाषा की पूर्ति करना इतना सहल नहीं जितना कि अनुमान करना।

ईश-प्राप्ति के रहस्य को प्रकट करने का विषय गूढ़ और कठिन है तथापि पुरुष मात्र के लिये साहस और श्रद्धा ही दुष्कर समय में श्रेष्ठ सहायक है। अतः मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार इन ही उपायों का प्रयोग करता हुआ यथा शक्ति श्रद्धित हृदय से ईश्वर-प्राप्ति के रहस्य को प्रकट करता हूं। अनुचित शब्द का क्षमा प्रार्थी हूं।

यदि मनुष्य मात्र सच्चे श्रद्धित और प्रेमान्वित हृदय से ईश-प्राप्ति की कामना करता है, तो अवश्यमेव परमपद की प्राप्ति होती है।

परमात्मा की प्राप्ति का श्रेष्ठ एवं मुख्य साधन भक्ति है। भक्ति का रहस्य गूढ़ है परन्तु सरल है। भक्त पुरुष उस दशा में कर सकता है, जब उसका भगवान् में पूर्ण संशय रहित, निर्मल तथा अविचल विश्वास और प्रेम हो। इस दशा में पुरुष को विशेष ग्रन्थादि से ज्ञान की खोज करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि "सा परानुरक्तिरीश्वरे तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्" अर्थात् ईश्वर के प्रति परम अनुराग को "भक्ति" कहते हैं। और यदि भक्ति श्रद्धा युक्त और पूर्ण संशय रहित हृदय से की गई हो तो वह अवश्यमेव सच्चिदानन्द-प्राप्ति के लिये, अन्य किसी संगृहीत ज्ञान के बिना भी पर्याप्त है। क्योंकि।

"भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥"

अर्थात् जो उच्च कोटि की भक्ति के द्वारा मुझको तत्व से भली प्रकार जानता है कि मैं जो और जिस प्रभाव वाला हूं उस भक्ति से मुझको तत्व से जान कर तत्काल ही मुझ को प्राप्त हो जाता है। सबल प्रमाण के लिये ध्रुव प्रह्लाद, व्याधा और गज, इत्यादियों की श्रद्धा युक्त और सरल भक्ति प्रत्यक्ष है। इन अबोध बालकों पुरुष और पशुओं को तो किंचित् भी ईश्वरीयज्ञान प्राप्त न था परन्तु केवल अखण्ड भक्ति प्रेम से ईश्वर को प्राप्त किया था। वास्तव में भक्ति ही भगवान को प्रिय है। "भक्ति प्रियो माधव" अन्य उपाय भगवान् की प्राप्ति के लिये कठिन है। यदि पुरुष अपने कर्तव्यों और मनु-लिखित दश धर्मों (धृति, क्षमा, दम अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध) का पालन पूर्ण रूप से करे तो अवश्यमेव ईश्वर प्राप्ति होती है।

भगवान की प्राप्ति का तृतीय उपाय योग साधन अर्थात् योगाभ्यास है। भगवान्‌ने गीता में कहा है:-

"प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्ध किल्बिषः।
अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति पराङ्गतिम्॥"

(गीता ६-४५)

अर्थात् अनेक जन्मों में अन्तःकरण की शुद्धि रूप सिद्धि को प्राप्त हुआ और अति प्रयत्न से अभ्यास करने वाला योगी संपूर्ण पापों से अच्छी प्रकार शुद्ध होकर उस (योग) साधन के प्रभाव से परमगति अर्थात् भगवान् को प्राप्त होता है। फिर भगवान गीता के अष्टम अध्याय में कहते हैं।

"अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥"

अर्थात् कौन्तेय (नियम है कि) परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रूप योग से युक्त अनन्य और न जाने वाले चित्त से निरन्तर चिन्तन करता हुआ (अभ्यास रूपी योग के प्रभाव से) अर्थात् यम-नियमों के पालन से और अच्छे गुणों के ग्रहण करने से भी अवश्यमेव सिद्धि प्राप्ति होती है। यम-नियम और गुण ग्रहण करने योग्य प्राप्ति के साधन ये हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ये यम नियम हैं। अपैशुन्य, सेवा, क्षमा, धैर्य्य, अद्रोह और सत्संग इत्यादि गुण ग्रहण करने योग्य हैं। इन कर्मों के करने और गुणों के ग्रहण करने से शारीरिक और आत्मिक उन्नति होती है और अन्तः करण शुद्ध होता है, नये २ सद्भाव उत्पन्न होते हैं जिनसे ईश्वर प्राप्ति सहज ही हो जाती है।

अन्य उपाय ईश्वर-प्राप्ति का त्याग है। अर्थात् कुछ अवगुणों और अकर्मों के त्याग से भी भगवत् प्राप्ति निश्चय है। ये अवगुण अथवा अकर्म सर्वथा त्याज्य हैं। (१) चोरी, व्यभिचार, झूठ, छल, प्रमाद, दंभ और अभिमान (२) काम्य कर्म अर्थात् उपासनादि से स्वार्थ कामना करना (३) तृष्णा अर्थात् अनित्य सुख के लिये पदार्थों के प्राप्त करने की अति इच्छा (४) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ये मनुष्य की उन्नति के शत्रु हैं (५) भक्ति में आलस्य और कामना करना (६) संसार के समस्त पदार्थों और कर्मों में ममता आसक्ति इत्यादि। इन उपरोक्त अवगुणों व कर्मों से परमेश्वर प्राप्ति में बड़ी बाधा पड़ती है अथवा इनके दूर किये बिना प्राप्ति असम्भव ही है। अतः इनका त्याग करना प्राप्ति के मार्ग में निष्कण्टकता से अग्रसर होना है।

अन्य एक सरल उपाय और है। यदि मनुष्य भगवान् की रचना अर्थात् जीव, जड़ और जन्तुओं आदि को प्रेम, समता और दया भाव से देखे जैसे कि वह साक्षात् भगवान से बर्ताव कर रहा है। तब अवश्य उसकी भगवत्प्राप्ति निश्चय है। अति सरल उपाय ईश्वर-प्राप्ति का यह है कि अपने को (अहम्) भाव से रहित कर प्रभु चरणों में अर्पण करदे, अर्थात् जो कुछ करे वह ईश्वर के चरणों में अर्पण करदे। भगवान् स्वयं भी गीता में उपदेश देते हैं।

"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहन्त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अर्थात्-सर्व धर्मों को अर्थात् कर्मों के आश्रय को त्याग कर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन प्रभु की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा अर्थात् (अपने में लय कर लूंगा) शोक न कर।

ईश रहस्य अथवा तत्त्व को समझाने के

लिये मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम भी भगवत् प्राप्ति का उपाय कहते हैं।

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम" ॥

अर्थात् जो एक बार भी मेरी शरण होकर यह कह देता है कि (मैं तेरा हूं) उसको मैं सर्व भूतों से अभय कर देता हूं।

उपरोक्त ये अनेक उपाय ईश्वर-प्राप्ति के प्रत्येक मनुष्य मात्र के लिये हैं। इनका किसी जाति विशेष से सम्बन्ध नहीं प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति के लिये ये योग्य हैं। ईश्वर की प्राप्ति का ध्येय ही मनुष्य को सच्चे सुख के मार्ग पर ले जाने वाला है, सांसारिक सुख अनित्य है—यथा।

है संसार अनित्य यह, और क्षणिक यह देह।
धर्म, कर्म, और साथ से, प्रभु चरणन को नेह ॥

यथार्थ में भगवान् ही नित्य, सच्चिदानन्द अजर, अमर, अविनाशी सत्य, और प्रेम मय हैं, उनकी प्राप्ति ही सच्चा और उच्चतम कोटि का सुख देने वाली है। अतः मनुष्य मात्र का सच्चा कर्त्तव्य अथवा कर्म ईश्वर-प्राप्ति के लिये ही होना चाहिये क्योंकि ईश्वर-प्राप्ति ही अक्षय है परमानन्द दायक है।

क्षणभङ्गुर यह विश्व है, करो धर्म में वृद्धि।
सभी उपायों से करो, अपने मन की शुद्धि ॥

हे प्रभो यह तुच्छ लेख आपको ही भेंट है।

तेरी छवि

[ले० पं० मदनगोपाल सिंहल]

व्योम मध्य इन्दु की विशाल किरणें देख।
जगत को तेरा ही प्रकाश दिखलाती है ॥
दया का प्रसार तेरी सागर बताता नित्य।
तेरी ही प्रशंसा ये तरङ्ग माला गाती है ॥
तेरे हंसने की ध्वनि ही में तो हमारे नाथ।
नदियां निनाद कर सिन्धु तीर जाती है ॥
चर औ अचर जड़ चेतन में तेरी ही लो।
अनुपम छवि ये प्रकृति दिखलाती है ॥

ममता और समता

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

ममता ही सब दुःखों की खान है और समता ही सर्व सुखों की खान है। ममता ही नीचों की नीच चुड़ैल है समता हरि को मिलाती है ममता ही से जन्म पाता है समता से बन्धन से मुक्त हो जाता है। ममता में जादू भरा है समता में निर्मलता है।

सुन लो भाई सुनाएंगे बड़े जोर से।
हमको होते हैं बरी अपनी ओर से ॥
ममता को हमने जब गले लगाई थी।
जो कभी न आन की थी वह भी आफत आई थी ॥
जो हमको मुंह न लगाते आप।
मजाल थी किंचित भी लग जाता पाप ॥
इससे होशयार बने रहते अगर।
तो खाते गैरों की ठोकरें क्यों कर ॥
दर २ कुत्ते की तरह घुमाया हमको।
दया हुई गुरु की तब मिलाया सबको ॥
गुरु से बढ़कर न कोई परोपकारी है।
जिसने हटाई ममता की बीमारी है ॥
गुरु ने गुरु बता कर छोड़ दिया।
किस्मत का भांडा फोड़ दिया ॥
भांडा फूटा अब ममता रक्खूं कहां।

ममता ही ममता है यहां वहां ॥
भीड़ सा जाता है यही पावता।
रोता हुआ क्या आयत का पता लायगा ॥
सबको आने हैं मेर घर घर।
आनन्द ही आनन्द रहो तोड़ ऊपर ॥
हो रही नित्य ही आनन्द बधाई है।
क्या कहूं कुछ कहा नहीं जाई है ॥
धन्य गुरु धन्य गुरु धन्य शास्त्र।
कृत कृत्योऽहम् धन्योऽहम् २ ॥

सावधान सावधान सावधान सुनिये इस रोगी की बात इस रोग से चन्दरोज़ हुए अभी निरोग हुआ है, यह ताज़ा नुसखा है, ध्यान से सुनिये यह चूर्ण पत्थर हाजिम है, देश काल वस्तु सब इस नुसखे में खतम है यह हाज़मी होने से देशी होने से अनुकूल पड़ेगा। अगर आप असावधान होकर पढ़ेंगे तो बना बनाया रस सूख जावेगा, आप उदासीन होकर पढ़ेंगे तो ज्ञान अंकुर सूख जावेगा, लेखक के मनोरंजन रूपी कोपलें फूटेंगी अर्थ शब्द की बाट देखता है अगर आप एकाग्र चित्त श्रोता बनते हैं तो एक अभिप्राय से दूसरा अभिप्राय उत्पन्न होगा और बुद्धि पर भाव रूपी पुष्पों की वृष्टि होगी इसमें विरुद्ध होने पर तो इसका भी रस सूख जावेगा। क्या कहूं कहते न बनइये तो [illegible] कहते ही लीजिये। उर अनुभव कह सकहि न कोई तदपि कहे बिन रहा न सोई। भाई लीजिये मन का पान भी बहुत होता है लेख तुच्छ है पर प्रेम तो तुच्छ नहीं प्रेम के सामने नियम [illegible] नहीं रहता। प्रेम गली अति सांकरी तामें दो न समांय प्रेम का पंथ निराला है जाने जो सांचा सत्गुरु रंग रांचा समझे बात हमारी क्या जाने संसारी। संसारी तो जन्म मरण रूपी रोग तृष्णा रूपी खांसी आवागमन की डोरी गले के बीच काल रूपी फांसी डारकर पाता है परन्तु तो भी इस ममता राक्षसी के पंजे से निकलने की कोशिश नहीं करता धन्य है ममता तुझको और तेरे जनक अहंकार को, ऐसी भूल भुलैया में फंसाया है न कुछ का सब कुछ कर दिखाया है जानते हुए अज्ञान बना दिया है क्लोरोफार्म सुंघा दिया है ज्ञान की तरफ से तेरे को धन्य है परन्तु तू मरे को ही मारती है जो तुझको व तेरी सब हालत को जान गए उस पर तेरा कुछ नहीं चलता क्या माया नैना मटकावे कबीरा तेरे हाथ न आवे। ममता अहंकार की पुत्री है।

ज्ञान शंकर नामी एक जिज्ञासु शांताश्रम नामी महात्मा के पास पहुंचा और सविनय पूर्वक दण्डवत कर आज्ञा पाकर बैठ गया कुछ समय बाद अवसर पाकर महात्मा जी से जिज्ञासा की कि मैं कुछ पूछना चाहता हूं।

शांताश्रम-निर्भय होकर पूछो क्या पूछना है शंका कोई भी न रखना। यथोचित उत्तर मिलेगा।

ज्ञान शंकर- श्रीमहाराज मैं पढ़ा तो बहुत हूं सब शास्त्र स्मृति वेद भी पढ़े हैं पर शान्ति नहीं होती है क्या कारण है।

शांताश्रम-अहंकार और अहंकार की पुत्री ममता ने तुझको ठग लिया है।

ज्ञान शंकर- कृपया अहंकार और ममता का स्वरूप मुझको दर्शाइये। जिससे मेरे दिल के संशय दूर हो जावें क्योंकि शास्त्र तो मैंने भी बहुत देखे हैं और आज तक मेरी श्रद्धा किसी पर भी नहीं हुई थी पर अब मेरे दुःखों का अन्त आगया मालूम होता है इसी से आप में मेरी अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई है।

शां०- यह अहंकार की पुत्री ममता ही सबके ज्ञान में आड़ करती है यही तमोगुण रूपी राक्षसी है यह सुबुद्धि को ढांप देती है किसी २ को इस ही

लेती है यह निशाचरी विवेक का नाम निशान ही मिटा देती है वे उसी के वश हो जाते हैं इसलिये निश्चय करो गुफा में जाकर उस तामसी के मुंह में पड़ते हैं जिसका मुंह आशा रूपी लार से भरा हुआ है जिसमें हिंसा रूपी जीभ लटकती है असन्तोष रूपी मांस के गोले निरन्तर चबाती रहती है तथा अनर्थ रूपी कान तक होंठ चाटते हुए जब कहीं बाहर निकलती है तो मुंह मानो तृष्णा रूपी गुफा बन रहा हो जिसकी द्वेष रूपी डाढ़ें ज्ञान के खस खस अर्थात् सस्ती वस्तु की तरह सहज ही में चबा कर पीस डालती है और इस राक्षसी का अक्लि और मर्म मूर्खों की स्थूल बुद्धि को ढांप लेता है ऐसी ममता राक्षसी के जो प्राणी बलि होते हैं वे भ्रान्ति रूपी कुण्ड में गिर जाते हैं। इससे तम के गढ़ में पड़े हुए कभी विचार के हाथ नहीं लगते उनकी बुद्धि यह नहीं समझ सकती कि हम कौन हैं कहां से आये हैं किस गढ़े के अन्दर चले जावेंगे हमारा क्या कर्तव्य है यानी अन्धे हुए घूमते ठोकरों पर ठोकरें खाते ही रहते हैं और ममता युक्त भावना के कारण भ्रम से यह समझते हैं कि संसार ही सत्य है और नित्य व अनित्य के विचार से शून्य ही रहते हैं जैसे ज्वर से मुँह दूषित हो गया हो तो दूध भी विष समान कडुआ लगता है वैसे ही ममता समस्त दैवी सम्पत्ति को दबा देती है और उसकी तरफ विचार भी नहीं करने देती।

ज्ञान–श्रीमहाराज ममता को कैसे जानूं? जब तक ठीक २ उसका स्वरूप नहीं जानूंगा तब तक हटाने की कोशिश नहीं कर सकूंगा आपके इतने समझाने से मेरे दिल में उत्साह होता है कि इस राक्षसी के फंदे से बच जाऊंगा अगर आपके कहे अनुसार अनुष्ठान करूंगा आपके सन्मुख प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं आपके दिये हुए ज्ञान रूपी शस्त्र से इस राक्षसी का शिर खड्ग से अलग करूंगा।

शां०–तेरी वीरता को देख कर मुझे भी विश्वास होता है कि तू दैवासुर संग्राम में विजयी होगा।

ज्ञान–ममता क्या है कहां से उत्पन्न होती है।

शां०–ममता का पिता अहंकार है और माता अज्ञान है और काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, कपट, अहिंसा, ईर्षा ये इस ममता की सन्तान हैं सावधान होकर श्रवण कर तुझको सुनाता हूं सुन तू ही इसका आधार है और इसका अधिष्ठान भी तू ही है परन्तु अज्ञान से प्रतीत नहीं होती अपने स्वरूप के विरुद्ध ज्ञान का नाम अज्ञान है कोई ज्ञान ही न होना अज्ञान का अर्थ नहीं है जो विरुद्ध ज्ञान का बना हुआ है सो सुन अक्रिय, असंग, अमल, अविनाशी, सर्व शक्तिमान आदि जो तू है अपने को ऐसा ज्ञान कर्ता, भोक्ता चल विनाशी, पराधीन भ्रम से मान लिया है यानी कल्पना कर लिया है वास्तव में तो हुआ नहीं है पर न होते हुए भी अनहुए के समान नहीं है यही अज्ञान है ऐसा भ्रमात्मक होते ही इससे अहंकार की उत्पत्ति हुई यही अज्ञान है तू अपने ही अज्ञान से फंस गया है अपने ही ज्ञान से छूटेगा अहंकार भी दो प्रकार का है सामान्य और विशेष यह पहले अंक के लेख "राग से योग" में विस्तार से लिख चुके हैं। इस से यहां नहीं लिखा। जहां "मैं" की कल्पना हुई फिर "मेरा" हुआ इतना मेरा है इतना उसका है यही ममता है सर्व का स्वामी होते हुये अब थोड़े का स्वामी बन अल्पज्ञ हुआ परन्तु अल्पज्ञ हुआ भी तब भी पूर्ण सत्ता स्वामी पने की नहीं छोड़ता है। यही रहस्य है यही समझने योग्य गुप्त ज्ञान है यहां तक निष्पाप था अब यहां से ही पाप लगा ममता

रूपी राक्षसी ने अपना शिकार बनाया वास्तव में तो ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा है। ममता का झगड़ा अब समझ में आया या नहीं ?

ज्ञा–इतना तो मैं पहले ही से जानता था मैं तो आप से पहले ही प्रार्थना कर चुका हूं कि यदि मैं उत्तम संस्कारी होता तो इतने तर्क में काहे को पड़ता मुझे तो प्रत्यक्ष करके दर्शाइये जिससे मेरे भ्रम की निवृत्ति हो मैं आपकी शरण हूं। इतना कह चरणों में गिर प्रणाम करते हुए प्रार्थना करने लगा कि महाराज मुझे भवग्राह से छुड़ाइये।

शा–सावधान हो बैठ तू उत्तम संस्कारी नहीं है तो भी तुझको समझाऊंगा यह तेरे कहने से और मेरे किये हुए उपदेश के समझ में न बैठने के कारण ऐसा मालूम होता है परन्तु तुझको यह मालूम हो गया कि मैं ऐसा हूं यही ज्ञान की प्राप्ति का कारण है अब एक दृष्टांत देकर तुझको समझाते हैं।

एक राजा स्वयं प्रकाश नाम का था उसका देश बहुत धन धान्य से संपन्न था और प्रजा पालक था उसके देश में प्रजा किसी भी प्रकार दुखी न थी सब ही सत् धर्म गामी थे। एक दिन राजा कुछ सैन्य लेकर जंगल की तरफ शिकार को गया और वहाँ शिकार का पीछा करते २ जंगल में फंस गया, सेना भी पीछे रह गई। राजा इधर उधर घूमता २ एक झोपड़े की तरफ जा निकला रात होगई थी मार्ग का कोई पता नहीं था राजा ने यह सोच कर कि रात यहीं व्यतीत करिये. ऐसा विचार कर राजा उसकी तरफ जा घोड़े को पेड़ से बांध कर उसके मालिक से बात करने लगा उसने बड़े आदर से राजा को रक्खा और जो कुछ भी उसके पास था भोजन दिया। राजा थका तो था ही निद्रा के वशीभूत हो सो गया। सवेरा होते ही उठा तो राजा ने प्रसन्न हो कर पूछा कि भाई तू कौन है और तेरी शरीर यात्रा का निर्वाह कैसे होता है उसने उत्तर दिया कि महाराज मैं जाति का धीवर हूं मेरे एक स्त्री ५ पुत्र ५ पुत्री १ मैं १२ प्राणी हैं और जंगल में ही रहते हैं जैसे बनता है तैसे गुजर करते हैं अगर आपकी कृपा हो जाये तो यह दरिद्र दूर हो जाए। यह सुन कर राजा ने कहा:–

राजा–तुम हमारे शहर में रहो हम तुमको धन व मकान देंगे अच्छी तरह से रहना किसी प्रकार का कष्ट न होगा।

धी–महाराज हम वनवासी हैं यानी बहुत काल से जंगल में ही रहते हैं शहर में रहने को हमारा जी नहीं चाहता।

राजा मन में कहने लगा कि क्या करना चाहिये शरणागत की रक्षा करना काम है कुछ देर विचार कर कहा कि यहां थोड़ी ही दूर पर हमारी एक चन्दन बगिया है वह तुझे देते हैं वहां सुख चैन से रहना पर मेरे को मत भूलना फिर राजा ने धीवर को चन्दन बगिया बता कर वहाँ के कर्मचारियों से कहा कि इसकी आज्ञानुसार बर्ताव करना इतना कह कर राजा चला गया। इधर धीवर ने चन्दन बगिया पाकर अपनी सन्तानों के पालन करने की युक्ति सोचने लगा। विचारने से यही युक्ति समझ में आई कि वृक्षों को काट २ कर कोयले बना कर बाजार में बेचने चाहिये यह निश्चय कर अपनी सन्तान को साथ लेकर काटने लगा यहां तक कि संपूर्ण बगिया के वृक्षों की समाप्ति कर दी। कोई एक आधा वृक्ष अब रह गया तब धीवर सोच विचार में पड़ा कि अब क्या करना चाहिये बगिया तो अब काम नहीं आसकती। इधर दैवयोग से राजा को सुध आई कि धीवर तो अब बहुत मालदार हो गया होगा देखना चाहिये राजा जब

उधर आया तो देखता क्या है कि चन्दन बगिया सब वीरान होगई है काले २ ढेर लगे हैं कोई कोई वृक्ष किनारे पर दीखते हैं यह देख कर उसकी मूर्खता पर आश्चर्य कर रहा था कि इतने में ही राजा का आगमन सुन कर धीवर दौड़ा। उसे देख कर राजा ने पूछा "क्या हाल है"?

धी०-महाराज आपकी कृपा से अब तक खूब सुख रहा।

राजा-(कर्मचारियों को बुला कर) क्या हुआ तुमको क्या आज्ञा दी थी।

कर्म-महाराज हम ने तो कभी कोई भी राय नहीं दी और कभी हमने रोकना भी चाहा तो हमारी तरफ इनकी बिल्कुल ही निगाह न देख कर खिसकते हुए मुर्दे की तरह पड़े रहे। धीवर की तरफ देख कर राजा ने कहा कि भाई अब तू अपने किये को भोग।

धी०-महाराज अब कोई ऐसी बगीची बता दयेगा जिससे मेरी गुजर होवे।

रा०-मूर्ख तू ने तो ठीक उपयोग कर ही नहीं जाना अब दूसरी चन्दन बगिया तेरे को नहीं मिल सकती।

धी०-महाराज और क्या उपयोग करता कोयले बना २ कर बेचे और कुटुम्ब का पालन हो एक बात आपकी भूल गया "कि मेरे को न भूलना बगिया की समाप्ति होते हुवे देख आपकी याद आई सत्य सलाह कर ही रहा था कि राजा से मिलूंगा और दूसरी बगिया की प्रार्थना करूंगा अब आप सूखा जवाब देते हैं अब कहां जाऊं? तुम्हारे सिवाय मेरा सहारा कहां है आप जो चाहे सो करो अब तो आप की शरण हूं।

रा०-ठीक उपयोग ऐसा ही होता है जो तैने किया है?

धी०-आप ही बताइयेगा ठीक उपयोग कैसे होता है?

रा०-जाकर पेड़ में से एक लकड़ी काट और बाजार में पंसारी की दुकान पर जाकर बेच।

धी०-लकड़ी काटकर बाजार में जाकर पंसारी की दुकान ढूंढ कर और लकड़ी को देकर कहा इसकी कीमत दो जयेगा पंसारी ने उसकी कीमत के अनुसार द्रव्य दिया तब तो धीवर की आंखें खुली और पश्चात्ताप करने लगा। मैंने कैसी मूर्खता की हाय २ ऐसे अमूल्य बगीचे को जलाकर नाश कर डाला अब तो संतान के कहने में नहीं आऊंगा मुझको धिक्कार है धिक्कार है बार २ धिक्कार है द्रव्य को ले अब विचार करने लगा राजा ने निर्हेतु दयालुता मेरे साथ में की और मैंने उसका दुरुपयोग किया अब संतान को काबू में रखूंगा और फिर चंदन बगिया को आबाद करूंगा और बगिया देने वाले को याद कभी न भूलूंगा कुछ दिनों में बगिया आबाद हो गई और धीवर सुख चैन से रहने लगा। कुछ काल सुख भोग धीवरत्व को त्याग राजा के पास पहुंच गया तब राजा ने सत्कार पूर्वक पास बिठाया और कहा तू चन्दन बगिया का निवासक है और मैं समस्त चन्दन बगियों का निवासक हूं एक और बहुत का अन्तर है इस उपाधि को त्याग वास्तव में मैं और तेरे में क्या अन्तर रहा।

अपूर्ण

कलिकाल के वाचक ज्ञानी

[ले० भक्त रत्न श्री मथुराप्रसाद जी रिटायर जज]

वर्तमान कलिकाल में कितने ही हमारे भाई भाषा की एक दो पुस्तक पढ़ कर अपने को वेदान्ती पण्डित प्रसिद्ध करके अहंब्रह्म बने हुए स्वयं सन्मार्ग से डिगे हुए औरों को भी सत्पथ से हटा कर भ्रष्ट कर डालते हैं और महात्मा कबीर जी निश्चलदास जी आदि की बानी बोल कर भोले भालों को ऐसा उपदेश देकर कर्म और उपासना साधनों से दूर भगा देते हैं कि अहं ब्रह्मास्मि तत्त्वमसि इत्यादि वेदों के महावाक्य जीव और ब्रह्म का अभेद बतलाते हैं तो कर्म उपासना में समय बिताने की क्या आवश्यकता है केवल अपना स्वरूप ब्रह्म सर्वत्र व्यापक और सत्य है बाकी सारा जगत् और प्रपंच मिथ्या है वेद गुरु ईश्वर नरक स्वर्ग यह सब माया का जाल भ्रम रूप है। इत्यादि कथन करके वाचकज्ञानी न पाप करने से डरते और न शुभ कर्म या ईश्वर भक्ति करते हैं निर्भय विचरते हैं इसी अवसर के कुछ दृष्टान्त प्रिय पाठकों की सेवा में निवेदन किये जाते हैं।

(१) बद्रिका आश्रम की यात्रा में एक बुढ़िया रो रही थी कि उसकी गठरी कोई ले गया लोगों ने उससे कहा कि माई इस यात्रा में कोई किसी की वस्तु नहीं चुराता तेरी गठरी कौन ले गया। तब बुढ़िया बोली भैया पाप कर्म से डरने वालों और सद्गती के अर्थ यात्रा करने वालों से तो ऐसी बात बन नहीं सकती तुम ठीक कहते हो परन्तु जो महात्माओं के भेष में वेदान्ती वाचक ज्ञानी मनुष्य पुन्य पाप नरक स्वर्ग सब प्रपंच को मिथ्या कह कर सब कुछ अपना ही समझते हैं उनकी दृष्टि में दूसरा कोई है ही नहीं।

मुझे उनही का भय है कुछ समय पहले दो साधु मेरे साथ थे अब वो दीख नहीं पड़ते। उन पर ही मुझे सन्देह है बुढ़िया की बात सुन कर यात्रियों को दया आगई उनमें से चार जवान आगे दौड़ कर गये तो उन्हें गठरी लिये वे दो असाधु मिल गये, इन जवानों ने उन्हें रोक लिया आगे नहीं बढ़ने दिया। इतने में बुढ़िया और अन्य यात्री भी पहुंच गये बुढ़िया ने अपनी गठरी पहचान ली। यात्रियों ने उनसे गठरी लेनी चाही तो एक उनमें से बोला बाबा तुम अज्ञानी मालूम होते हो यह नहीं जानते कि सिवाय एक ब्रह्म के दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं माया से भ्रम हो रहा है गठरी हम से क्यों छीनते हो। हम ब्रह्मज्ञानी हैं जो कुछ नाम रूप दीख रहा है सब मिथ्या है वास्तव में सारा प्रपंच हम से जुदा नहीं हमारे स्वरूप में ही यह भिन्न भाव मिथ्या भान हो रहा है। यात्री को यह बात सुनकर अचम्भा हुआ। उसने क्रोध में भर कर उस वेदान्ती के शरीर में बेंत मारना आरंभ कर दिया। तब वह पुकारने लगा। उसका साथी भाग गया। अब वो कहने लगे। अरे राम मरगया मरगया गठरी लेलो मुझे छोड़ दो तब यात्री ने कहा सच बता यह गठरी किसकी है अब तो मार के आगे उनका ज्ञान सब उड़ गया कहने लगा। बाबा इसी बुढ़िया की यह गठरी है हमें छोड़ दो। यात्री ने कहा ब्रह्म असंग और निर्लेप है न उसके चोट लगती है न कोई मारने वाला है न मरता है तुम अजर अमर ब्रह्म हो फिर क्यों त्राहि त्राहि पुकारते हो। उस असाधु से कुछ उत्तर न बन पड़ा प्राण बचा कर भाग गया।

(२) दूसरा दृष्टान्त और सुनिये। एक व्यभिचारिणी स्त्री कुछ वेदांत पढ़ी हुई थी लोग

उसकी निन्दा करने लगे तब उसने कहा:-

ब्रह्मैव सत्यमिति वेद विदो वदन्ति ।
तस्मान्मम सखि परापर भेद बुद्धिः ॥
जारे तथा निजवरे सदृशोऽनुरागः ।
लोकाः किमर्थमसतीतिकदर्थयन्ति ॥

अर्थात् एक ब्रह्म ही सत्य है दूसरा कोई नहीं यह बात वेद के ज्ञाता कहते हैं। इसलिये मेरी बुद्धि में भेद नहीं है अपने निजपति और यार आशना को समान जानती हूं। अज्ञानी लोग नाहक मुझे असती यानि कुलटा कहते वृथा बकते हैं:-

आज कल के वेदान्त का यही परिमाण है वचन मात्र ब्रह्म बने हुए हैं। न उनको देह और आत्मा का विवेक है और न शम दम आदिक साधन संपन्न ही होते हैं।

(२) एक क्षत्रि राजपुत्र कुछ वेदान्त पढ़ गये थे। साधन संपन्न तो थे नहीं कर्म उपासना से घृणा थी। एक दिन शिकार खेलने गये। हिरन पर गोली चलाई वह उसके तो लगी नहीं एक गाय चर रही थी उसके जा लगी। वह मर गई साथ के लोगों ने घर पर आकर इस बात का शोक प्रगट किया। इस कारण से जनाने में भी उदासी छागई और वार शिकार से आने पर खुशी मनाई जाती थी, वह आज नहीं मनाई गई। ठाकुर साहब ने उदासी का कारण पूछा सब ने कहा आज आपके हाथ से गऊ हत्या होगई है। यह सुन कर ठाकुर साहब कहने लगे कि तुम सब अज्ञानी हो जीवात्मा तो अमर है और ब्रह्म रूप है। न वह मरता है न किसी को मारता है हत्या किसको लगती है। और जीव सब समान हैं अनेक चींटी खटमल जुएँ मनुष्य के हाथ से नष्ट होते रहते हैं ब्रह्म रूप अविनाशी सर्वत्र एक रस समान व्यापक है। हत्या किसी के नहीं लगती सब झूठ बात है। जैसा आनन्द सदैव मनाया जाता है मनाओ मंगल करो ठाकुर साहब के इस उपदेश को सुन कर सब ने चिन्ता दूर कर दी। रात के समय जब ठाकुर साहब खाना खा कर बिस्तर पर आराम करने लगे उनकी कुमारी कन्या जो १८ वर्ष की थी शृंगार किये हुए पलंग के पास खड़ी हुई दीख पड़ी (वास्तव में वो कन्या न थी गोहत्या रूप बदल कर आई थी) ठाकुर उसे देख कर बोले बेटी इस समय कैसे आई और आज यह नया स्वांग कैसा? कन्या रूप हत्या बोली। पिताजी आज मुझे काम देव ने व्याकुल कर दिया। और कोई उपाय न देख कर आपको एकान्त में आराम करते पाय चली आई। इतना कह पलंग पर चढ़ने को तैयार हुई। ठाकुर चौंक कर बैठ गये और बड़े क्रोध में भर कर कहने लगे। हैं हैं यह क्या करती है खबरदार तेरी बुद्धि कैसे भ्रष्ट हो गई नालायक चली जा ऐसा पाप कर्म करने को और मुझ से घोर पाप कराने को उद्युत हो गई कहीं पिता पुत्री में यह व्यवहार हो सकता है। तब कन्या बोली जीव तो चींटी और गऊ समान हैं। ऐसे ही पत्नी और कन्या में वो ही जीव आत्मा एक ब्रह्म रूप समान है कहीं ब्रह्म को भी पाप पुण्य लगता है। इस पर ठाकुर और अधिक क्रोध करके खड़े हो गये और कन्या को धमका कर बोले। अरी दुष्टा बातें बनाती है मेरे सामने से जाती नहीं। यदि न हटी तो अभी तेरी हड्डी पसली तोड़ दूंगा या जान से मार दूंगा। अभागा

ऐसा सुन कर हत्या ने अपना भयंकर रूप धारण कर लिया और एक तमाचा मार कर उसके मस्तक पर चढ़ बैठी ठाकुर के शरीर का रंग काला पड़ गया। हत्या ने कहा अब तेरा वेदान्त कहां गया। गऊ हत्या को तो पाप न समझा कन्या के संग को पाप मान कर क्यों कर डरने लगा।

नितान्त वाचक ज्ञानियों की ऐसी ही दुर्दशा होती है और होनी भी उचित है।

श्रीमद्भागवत में भगवत् भक्ति विहीन ज्ञानियों के विषय में स्पष्ट कहा है:-

येऽन्येरविन्दाक्ष विमुक्त मानिनस्त्वय्यस्त भावाद् विशुद्ध बुद्धयः
आरुह्यकृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनाद्रित युष्मदङ्घ्रयः ॥
तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्ध सौहृद
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकप मूर्धसु प्रभो ॥

अर्थात् हे कमल नयन जो लोग आपकी भक्ति से विमुख होकर अपने को मुक्त मानते हैं वे कठिनाई से परंपद को पहुंच कर भी नीचे गिर जाते हैं और जो आप के आश्रित भक्त हैं वे आप से सुरक्षित होकर विघ्नों के सरदार के सिर पर पैर रखते हुए निर्भय विचरते हैं। हरि भक्तों को पतन का भय नहीं होता।

(सवैया)

पूरण ब्रह्म हूं मैं इम व्यापक धर्म अधर्म को मैं नहि भागी।
वाचक ज्ञानी बड़े अभिमानी कहैं असयानी विषय अनुरागी॥
पाप करैं न डरैं परलोक तें दान दयादिक सुकृत त्यागी।
सो मथुरेश की भक्ति विहीन मलीन पड़े भव कूप अभागी॥

जिनका अन्तःकरण निष्काम कर्म करके शुद्ध नहीं और जो भगवत् शरण न होकर ज्ञान के अभिमान में डूबे हुए हैं ऐसे वाचक ज्ञानी चौरासी के चक्कर में पड़के कष्ट पाते हैं। (इसी विषय में महात्मा नारायण स्वामी आज्ञा करते हैं)

(कवित्त)

चाहे तू योग कर भृकुटि में ध्यान धर।
चाहे नाम रूप मिथ्या जान के निहारले॥
निर्गुण निर्भय निराकार ज्योति व्याप रही।
देखो तत्व ज्ञान निज मन में तू धार ले॥
नारायण आपने को आप भी बखान कर।
मोतें वो भिन्न नहि या विध पुकार ले॥
जबलौं गोप नन्द को कुमार नहि दृष्टि परै।
तौलौं तू भले ही बैठ ब्रह्म को विचार ले॥

प्रयोजन यह है कि जब तक भगवत् साक्षात्कार नहीं होता उसी समय तक ब्रह्म ज्ञान कहने सुनने में भला प्रतीत होता है। जहां वो सांवरी सलौनी मन मोहनी छटा जरा भी दृष्टि में आगई फिर थोथे ज्ञान का पोथा नहीं खुलता। और भक्ति के बिना ज्ञान सर्वथा निस्सार है इसी को एक महात्माने वर्णन किया है

स्वर्ण घट ज्ञान और रत्न जटित सोह पैना।
पानी ना बीच सो न प्यास न विश्राम को॥
ऐसे ज्ञान पूरण विज्ञानता प्रधान लिये।
प्रेम सुधा हीन नहीं भक्तन के काम को॥
जैसे पाकशाला शुभ सुन्दर है मणिकी।
अन्न बिन भूखन कौं हजार नाम धाम को॥
कहै विनोदास ज्ञान रूखो बिन युगल भाव।
मोहन मन सो है जो सनेही प्रियाश्याम को॥

एक महात्मा वादी अद्वैत वेदान्त शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता अपनी दशा वर्णन करते हैं:-

अद्वैत वीथी पथिकैरुपास्या स्वराज्य सिंहासन लब्ध दीक्षा।
शठेन केनापि वयं हठेन दासी कृता गोपवधू विटेन॥

मधु सूदन स्वामी अद्वैत वादी पराकाष्ठा के प्रसिद्ध हैं वह कहते हैं:-

ध्यानाभ्यास वशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियम्।
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते॥
अस्माकं तु तदेव लोचन चमत्काराय भूयाच्चिरम्।
कालिन्दी पुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं तमो धावति॥

अर्थात् ध्यान और अभ्यास के द्वारा वश में लाये हुए मन से योगी लोग यदि उस निर्गुण और क्रिया रहित ज्योति (प्रकाश) को देखते हैं तो

देखा करें। हमारे नेत्रों के चमत्कार के लिये तो यमुना किनारे कोई अनिर्वचनीय श्याम छटाइधर उधर विचरता हुआ ही होना चाहिये।

शेष आगे

श्रुति सार

ईशावास्योपनिषद्

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा,
भद्रं पश्येमा क्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा सस्तनुभि,
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेन भुँजीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम्

जो कुछ जगत् में नाम रूपात्मक है सो यह सब ईश्वर करके आच्छादित है। उससे अर्थात् जगत से पृथक् होकर अपने आत्मा की रक्षा करें और किसी के भी धन की आकांक्षा न करे ॥१॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जीजीविषेच्छतं समाः
एवन्त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे

इस संसार में कर्मों को करते हुवे सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार करते हुवे तुझ मनुष्य में कर्म नहीं लिपायमान होगा ॥ २ ॥

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना

जो लोक अदर्शनात्मक अज्ञान से आवृत्त हैं वे असुरों के समान प्रसिद्ध हैं और जो कोई आत्माहत्यारे अपने आत्मा का उद्धार नहीं करने वाले जन हैं वे उन लोकों को मर कर प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो,
नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठ,
तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४॥

वह आत्मा अचल, विकार रहित, अद्वैत, और मन से आगे जाने वाला है। पहले से ही गया हुवा है। जिसको देवता भी नहीं प्राप्त होते हैं वही आत्मा शीघ्र चलते हुवे औरों को अर्थात् मन आदिकों को उल्लङ्घन करता है और उसी चेतन आत्मा में सूत्रात्मा प्राणवायु अग्नि आदित्य आदि और सब प्राणियों के ज्वलन दहन आदि कर्मों को धारण करता है अर्थात् सब को अपने कर्मों से प्रेरणा करता है ॥ ४ ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्ति के।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः

वह आत्मा उपाधि करके चलता है, वह आत्मा उपाधि बिना नहीं चलता। वह आत्मा अविद्वानों से दूर है, वैसे ही विद्वानों के समीप है और वह आत्मा इस सम्पूर्ण जगत् के आभ्यन्तर में स्थित है और वह आत्मा इस सब जगत् के बाहर है ॥ ५ ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषुचात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥

जो ज्ञानी पुरुष सब भूतों को आत्मा में निश्चय करके देखता है और सम्पूर्ण भूतों में आत्मा

को देखता है यह सन्देह को नहीं प्राप्त होता है ॥ ६

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः

जिस काल में ज्ञानवान् को सम्पूर्ण भूत आत्मा ही प्रतीत होता है उस काल में अभेद देखने वाले पुरुष को कहां मोह और कहां शोक है ॥ ७ ॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ॥

हे पोषण कर्ता सूर्य ! सत्य परमात्मा के उस द्वार को जो तेजोमय पात्र से आच्छादित है तू मुझ सत्यधर्मी के दर्शन के लिये खोल दे ॥ १५ ॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तां शरीरम् ।
ओं क्रतोस्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतंस्मर

देहावसान समय में प्राण वायु सूत्रात्मा समष्टि प्राण को, लिंग शरीर अपने कारण तत्व को और यह स्थूल शरीर अन्त भस्ममात्र को प्राप्त हो। हे मन ओंकार को स्मरण कर और किये हुवे शुभ कर्मों को स्मरण कर। हे मन ! किये हुवे शुभ कर्मों को स्मरण कर स्मरण कर ॥ १७ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् ।
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ॥
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो ।
भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

हे प्रकाशात्मक देव ! हे अग्ने ! सर्व कर्मों को जानने वाला तू हमको कर्मफल के अर्थ शुभ मार्ग से ले चल और हमारे कुटिल वचनात्मक पाप को नाश कर। तेरे अर्थ बहुत से नमस्कार के वचन हम कहते हैं ॥ १८ ॥

ओं शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

अवधूतोपाख्यान ।

(ले० प्रभुदेव ब्रह्मचारी आश्रम)

गतांक से आगे

१८–अवधूत बोले–हे राजन् (मैंने कुरर पक्षी से यह ज्ञान प्राप्त किया है कि) मनुष्य को जो जो वस्तु अधिक प्रिय हैं वे ही उसके दुःख की हेतु हैं। जब मनुष्य अपनी अभीष्ट वस्तुओं को संचय करता है तो वे उसको घोर दुःख में फंसा देती हैं। एक कुरर पक्षी अपनी चोंच में मांस लिये हुये जा रहा था, उसके चारों तरफ से बिना मांस वाले पक्षी उसको मार रहे थे और जब तक उसने मांस को न छोड़ा उन्होंने उसे घायल कर दिया, तब वह मांस को छोड़ कर ही दुःख से छूटा। अतः विद्वान् को प्रिय या अप्रिय वस्तु का संचय ही नहीं करना चाहिये।

१९–(मैंने बालक से यह ज्ञान प्राप्त किया है कि) जैसे बालक को मान, अपमान, गृह, परिवार की चिन्ता नहीं ऐसे ही मैं भी आत्मा में ही क्रीड़ा करके मग्न होता हुवा बालक के समान निःशंक विचरता हूं। संसार में दो प्रकार के ही व्यक्ति सुखी हैं एक तो अबोध बालक जिसको कुछ ज्ञान ही नहीं दूसरा परमहंस जो त्रिगुणातीत हो।

२०–(अब मैंने कुमारी से जो सीखा है सो सुनो) एक बार एक कुमारी अपने को वरण करने को आये हुये अतिथियों की सेवा स्वयं करने लगी और उनको भोजन कराने के लिये धान कूटने लगी तो उसकी चूड़ियां शब्द करने लगीं। तब उसने उस शब्द को निन्दाजनक जान कर लज्जावश एक एक करके तोड़ डाली और दोनों हाथों में दो दो

चूड़ियां शेष छोड़ीं, जब वह फिर धान कूटने लगी तो फिर वे दो दो भी चूड़ियाँ शब्द करने लगी तब उस कुमारी ने एक एक को और भी तोड़ डाली फिर एक एक चूड़ी का शब्द नहीं हुवा। हे शत्रुदमन! लोकतत्त्व की जिज्ञासा से लोकों में विचरते हुये मैंने उससे यह शिक्षा ली कि बहुत लोगों के एक साथ रहने से कलह और दोओं के साथ रहने से वार्तालाप होते हैं अतः कुमारी के कङ्कण की समान अकेला ही विचरे। इसमें कोई क्षति नहीं।

२१-(मैंने बाण बनाने वाले से यह शिक्षा ली कि-) प्राणायाम द्वारा श्वास को एवं अभ्यास से आसन को जीत कर वैराग्य अभ्यास के द्वारा आलस्य रहित चित्त को वश में करता हुवा परमात्मा में लगा दे। उस परमानन्द रूप परमपद में स्थित हुवा मन शनैः २ कर्म रूपी धूलि को छोड़ देता है और फिर सतोगुण के बढ़ने से रजोगुण और तमोगुण को नष्ट करके जैसे इन्धन बिना अग्नि शान्त हो जाता है तैसे ही मन निर्वाण को प्राप्त होता है। सो इस प्रकार आत्मा में चित्त का निरोध होने पर बाहर भीतर कहीं कुछ भी भान नहीं होता। जैसे एक बाण बनाने वाले ने बाण बनाने के काम में निमग्न होने के कारण राजा की फौज को नहीं देखा जो कि उसके अत्यन्त निकट से चली गई।

२२-(सर्प से मैंने यह उपदेश ग्रहण किया है कि-) मुनि को सर्प की भांति अकेले विचरना चाहिये और कोई स्थान निश्चित न करे प्रमाद न करे, गुहा आदि में सो जावे, बाह्य आचारों से अपने को छिपाये रक्खे तथा अल्प (थोड़ा) भाषण करे। इस अनित्य शरीर के लिये गृह आदि बखेड़ा करना दुःख का ही कारण है। सर्प दूसरों ही के घर में रह कर तथा कभी कभी बाहर ही रह कर सुखी रहता है।

२३-(मकड़ी से मुझे यह अनुभव हुवा कि-) एक नारायण देव ने ही स्वमाया से कल्प के आदि में प्रथम इस संसार की रचना की और कल्प के अन्त में ईश्वर ही कालरूप से इसका संहार करके अद्वितीय एक ही आत्माधार और सर्वाधिष्ठान रूप से शेष रहते हैं। वह प्रधान पुरुषेश्वर अपनी काल रूप शक्ति से सत्वादि शक्तियों की साम्यता होने पर, पर अवर (अलौकिक लौकिक) से भी परम कैवल्य संज्ञा से आदि पुरुष रह जाते हैं। हे अरिन्दम! वह उपाधि रहित केवल अनुभव जन्य आनन्द का समूह अपनी त्रिगुण (सत, रज, तम) मयी माया को क्षुब्ध करके केवल अपनी काल शक्ति द्वारा प्रथम सूत्र (महत्तत्व) की रचना करते हैं। उस से ही नाना प्रकार की सृष्टि रचने वाले त्रिगुणमय अहंकार की उत्पत्ति होती है जिसमें कि यह सम्पूर्ण विश्व ओत प्रोत है तथा जिससे जीव का आवागमन होता है। जिस प्रकार मकड़ी अपने हृदय से मुख के द्वारा जाल फैला कर उसमें विहार करके फिर उसको निगल लेती है उसी प्रकार महेश्वर भगवान् इस प्रपंच का अपने से ही प्रादुर्भाव करके अपने में ही विलीन कर लेते हैं।

२४-(मैंने भृंगी कीड़े से यह सीखा है कि-) देहधारी जीव स्नेह से, द्वेष से अथवा भय से जिस किसी में भी सम्पूर्ण रूप से अपने मन को लगा देता है वह तदाकार हो जाता है, जिस प्रकार भृंगी द्वारा अपने बिल में बन्द किया हुवा कीड़ा भय से उसी का ध्यान करते २ अन्त में अपने रूप को त्याग उसी के समान रूप वाला हो जाता है।

अवधूत बोले-हे राजन्! इस प्रकार मैंने इतने (२४) गुरुओं से ऐसी २ शिक्षायें ली हैं अब अपने शरीर से जो मैंने शिक्षा ली है सो कहता हूं

सुनो मेरे विवेक व वैराग्य का हेतु यह शरीर भी मेरा गुरु है उत्पत्ति और नाश ही इसके धर्म हैं, तथा निरन्तर दीनता ही इसका फल है। अतः इसे दूसरों का (स्यार, कुत्ते आदि का भक्ष्य) समझता हुआ इससे तत्व चिन्तन करता हूं और असंग हो कर विचरता हूं। जिसको सुख देने के लिये निरन्तर कठिनता से धन संचय करने वाला यह पुरुष स्त्री, पुत्र, धन, पशु, सेवक और अपने कुटुम्बियों का पोषण करता है अन्त समय वह देह इसको छोड़ कर वृक्षधर्मा (वृक्ष के से स्वभाव वाला होने से (कर्म रूपी) बीज बो जाता है। जिस प्रकार बहुत सी सपत्नियां (सौतें) अपने पति को अपनी २ ओर खैंचती हैं ऐसे ही जिह्वा, शिश्न, त्वक्, उदर, श्रवण, घ्राण, चञ्चल नेत्र और नाना कर्म की शक्तियां इस देह के स्वामी जीव) को अपनी २ ओर हठात खैंचती हैं, तथा मार्ग में ही इसकी सदाशाओं को काट देती हैं। भगवान् ने अपनी अजय आत्म शक्ति से पहले नाना प्रकार के वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी, वनमक्षिका, और मत्स्यादि योनियां रचीं, किन्तु उनसे सन्तुष्ट न होकर ब्रह्मदर्शन की योग्यता वाले इस पुरुष शरीर को बना कर सन्तुष्ट व प्रसन्न हुये। (इस से मनुष्य देह की सर्व श्रेष्ठता सिद्ध है) अनेक जन्मों के अनन्तर इस दुर्लभ परम पुरुषार्थ के साधन रूप नरदेह को पाकर धीर पुरुष को चाहिये कि जब तक यह मृत्यु के चंगुल में न फंसे तब तक शीघ्र ही मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रयत्न करले, क्यों कि विषय तो सभी योनियों में प्राप्त होते हैं (इनके भोगने में समय को व्यर्थ न खोवे) इस प्रकार वैराग्य युक्त अहंकार रहित असंग हो कर विज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश में इस भूमि पर विचरता हूं। केवल गुरु से ही सुदृढ़ और यथेष्ट ज्ञान नहीं हो सकता (इसके लिये स्वयं भी विचार की आवश्यकता है) देखो एक ही अद्वितीय ब्रह्म का ऋषियों ने नाना प्रकार से वर्णन किया है। ओमितिशम्।

भजन

सोई बडो जो हरिगुण गावे॥ टेक॥
शौच पवित्र होत पद सेवा बिन।
गुपाल ऊंच जन्म न भावे॥
वाद विवाद यज्ञ व्रत साधन।
कितहुं जाय जन्म डहकावे॥
होया अटक जगदीश भजनते।
सेवा तास चारु फल पावे॥
कहुं ठौर नहिं चरण कमल बिन।
भृंगी ज्यों दशहुं दिशी धावे॥
सूरदास प्रभु सन्त समागम।
आनन्द अभय निशान बजावे॥

२

मन माधव को नेक निहारहिं॥ टेक॥
सुन शठ सदा रंक के धन ज्यों।
छिन २ प्रभुहिं संभारहिं॥
शोभा शील ज्ञान गुण मन्दिर।
सुन्दर परम उदारहिं॥ १॥
रंजन सन्त अखिल अघ गंजन।
भंजन विषय विकारहिं॥ २॥
जो बिन योग यज्ञ व्रत संयम।
गयो चहहिं भव पारहिं॥ ३॥
तो जनि तुलसीदास निशिवासर।
हरि पद कमल बिसारहिं॥ ४॥

३

प्रानी हरियश मन नहिं आवे ॥ टेक ॥
अहनिशि मगन रहे माया में, कहु कैसे गुण गावे ॥
पूत मीत माया ममता सौं, यहि विधि आप बंधावे ॥
मृग तृष्णा जिमि झूठों यह जग, देखि तासु उठ धावे ॥
भुक्ति मुक्ति का कारण स्वामि, मूढताहि बिसरावे ॥
जन नानक कोटिन में कोऊ, भजन राम को पावे ॥

४

प्रभो यह कैसी तेरी शान ॥ टेक ॥
शुभग सुविस्तृत गगनाङ्गनमें।
निर्जन निशी के मृदु झन झन में ॥
रुचिर रम्यगिरि वन उपवन में।
लख पड़त तेरी मुसकान ॥ १ ॥
तारक पुञ्ज सुशोभित शशि में।
शुभ्र ज्योत्सना विखरित दिशिमें ॥
सुन्दर सुरभि समीर सरस में।
गूंज रही मृदु तान ॥ २ ॥
सुनता निरझर के झर झर में।
शुभग शान्तिमय गिरि गह्वर में ॥
मन्दाकिनि के मृदु मर मर में।
प्रियतम तेरा ही गुण गान ॥ ३ ॥
देखा रवि में अनिल अनल में, ।
अचर सचर चञ्चल अविचल में ॥
जल में थल में जगतीतल में।
तुम्ही छाय रहे हो भगवान ॥ ४ ॥

५

दासी छुट आयेगी गर वैकुण्ठ में घनश्याम रहे ॥
मुझको तकलीफ हुई पर आपको आराम रहे ॥ टेक॥
या वो बने मेरा या मुझे अपना करले।
बस्ले मन्जूर मेरे दिल में मेरा श्याम रहे ॥ १ ॥
लाज दासी की बचालो ऐ मेरे प्यारे प्रभु।
लोग क्या कहेंगे कि वा! कृष्ण तेरे झूठे हुऐ ॥ २ ॥

६

ऊधो पतिया जोग की रहन दो,
बतियां कहो मनभावनी ॥ टेक ॥
जे थी बतिया संजोग की,
आईपतियां श्याम वियोग की।
सुन २ के बतियाँ जोग की
रतियां भई डरपावनी ॥ १ ॥
जे बृज बाग नटवर गये,
जल सूख सब तरवर गये।
हंसा जो उड़ सरवर गये,
मोहे कर काग उड़ावनी ॥ २ ॥
गोधूरी धूसरी काजरी,
फिरैं हरि बिहूनी आजरी।
कहीं हो तो बैरिन बाजरी,
बंशी तू श्याम मिलावनी ॥ ३ ॥
बिथा कहें क्या बिछुरन पीर की,
नहीं बुझत दाह शरीर की।
नैनों से असुंवा नीर की,
बरसे घटा नित सावनी ॥ ४ ॥
जिनके न प्रीतम पास है,
उन्हें घर ही में बनवास है।
जन शंभुदास को आस है,
रक्खेंगे सूरत सुहावनी ॥ ५ ॥